महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दर्शन
(Important Political Philosophies)

****(वर्ष 2013 में संघ लोक सेवा आयोग ने सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा) के लिए जो नया पाठ्यक्रम लागू किया है, उसमें प्रश्नपत्र-1 के टॉपिक-5 के अंतर्गत एक उप-शीर्षक है- 'राजनीतिक दर्शन जैसे साम्यवाद, पूंजीवाद, समाजवाद; उनके रूप और समाज पर उनका प्रभाव'। यद्यपि पाठ्यक्रम में यह टॉपिक विश्व इतिहास के साथ रखा गया है, पर 'दृष्टि' द्वारा वर्गीकृत पाठ्यक्रम में इसे राजव्यवस्था का हिस्सा मानते हुए भाग-5 में स्थान दिया गया है। संदर्भ के लिए भाग-5 के टॉपिक-13 को देखें।*

उदारवाद
(Liberalism)

उदारवाद एक महत्वपूर्ण राजनीतिक दर्शन है जिसका गहरा संबंध पूंजीवाद के साथ है। पूंजीवाद एक आर्थिक प्रणाली है जिसे वैचारिक समर्थन देने वाला दर्शन उदारवाद है। उदारवाद का आरम्भ 17वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ और जो कई परिवर्तनों के साथ आज तक एक प्रमुख राजनीतिक विचारधारा बना हुआ है। उदारवाद 'लिबरलिज्म' (Liberalism) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। इसे उदारवाद (Liberalism) इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह व्यक्ति के लिए अधिकतम स्वतंत्रता (Liberty) की मांग करता है।

उदारवाद का उद्‌भव 17वीं शताब्दी में हुआ। उस समय बहुत सी ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने इस विचारधारा के विकास में योगदान दिया। पुनर्जागरण और धर्म सुधार आंदोलन ने धर्म के भीतर तार्किकता को बढ़ावा दिया जिससे मनुष्य और उसके सांसारिक हितों को महत्व मिलना शुरु हुआ। इसी समय वैज्ञानिक क्रांति के कारण पूंजीवाद का विकास शुरु हुआ। पूंजीवादी प्रणाली में जिस बुर्जुवा (पूंजीपति) वर्ग ने सामंत वर्ग के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की, उसी बुर्जुवा वर्ग के पक्ष में उदारवादी विचारधारा की स्थापना हुई। बुर्जुवा वर्ग ने सामंतों को मिलने वाले विशेषाधिकारों को चुनौती दी, स्वतंत्रता और समानता जैसे राजनीतिक आदर्शों की माँग उठाई तथा अनुबंध की स्वतंत्रता (Freedom of Contract) जैसे आर्थिक विचारों को प्रस्तुत किया। ये सभी विचार वस्तुतः पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक स्थितियाँ निर्मित करने वाले विचार थे। इसलिए राजनीति दर्शन में प्रायः माना जाता है कि उदारवाद पूंजीवाद का वैचारिक तर्क है।

उदारवाद के विभिन्न रूप *(Various forms of Liberalism)*

उदारवाद का विकास कई चरणों में हुआ है। इसके विकास के प्रमुख चरणों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

1. 'पारम्परिक' या 'नकारात्मक' उदारवाद *('Classical' or 'Negative' Liberalism)*

यह उदारवाद का आरम्भिक चरण है जो 17वीं शताब्दी के अंत से शुरु होकर लगभग 1850 ई. तक चलता रहा। इस वर्ग के प्रमुख विचारक हैं- जॉन लॉक, एडम स्मिथ, जेरेमी बेंथम तथा हर्बर्ट स्पेंसर। जॉन लॉक को उदारवाद का जनक भी कहा जाता है। इन विचारकों को 'पारम्परिक उदारवादी' इसलिए कहते हैं क्योंकि उदारवाद के विचारों की आरम्भिक धारणा इन्होंने प्रस्तुत की थी। इन्हें 'नकारात्मक उदारवादी' इसलिए कहते हैं क्योंकि इन्होंने स्वतंत्रता और समानता जैसे राजनीतिक आदर्शों की परिभाषा नकारात्मक पद्धति से की। नकारात्मक उदारवाद के प्रमुख विचार इस प्रकार हैं-

(i) मनुष्य एक तार्किक प्राणी है तथा अपने जीवन के संबंध में सर्वश्रेष्ठ निर्णय वह स्वयं ही ले सकता है।

(ii) व्यक्ति के वैयक्तिक तथा सामाजिक हितों में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। व्यक्तिगत हित की साधना से ही व्यक्ति सामाजिक हित में सहायक होता है।

(iii) प्रत्येक व्यक्ति को कुछ मूल अधिकार प्राकृतिक रूप से ही प्राप्त हैं जिनमें स्वतंत्रता का अधिकार, जीवन का अधिकार तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार प्रमुख हैं।

(iv) सभी व्यक्तियों के आपसी संबंध एक दौड़ के समान हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं के साथ इस दौड़ में भाग लेता है। राज्य का काम सिर्फ यह देखना है कि कोई भी व्यक्ति दौड़ के नियमों का उल्लंघन न करे। अंतिम रूप से किसकी हार होती है तथा किसकी जीत-यह तय करना राज्य का काम नहीं है। दौड़ में होने वाली हार और जीत न्यायोचित है, न कि अनैतिक।

(v) राज्य प्राकृतिक (Natural) या दैवीय (Divine) संस्था नहीं है बल्कि व्यक्तियों द्वारा अपने हित में बनाया गया एक कृत्रिम यंत्र है। राज्य का निर्माण सिर्फ इसलिए किया गया है कि सभी व्यक्ति शांति के साथ रह सकें। उसका कार्य सिर्फ यह देखना

641, प्रथम तल, मुखर्जी नगर, दिल्ली-9.
दूरभाष : 011-27604128, 47532596, (+91)8130392358-59-60
ई-मेल: drishtiacademy@gmail.com, वेबसाइट: www.drishtithevisionfoundation.com
फेसबुक: https://www.facebook.com/drishtithevisionfoundation

Copyright – Drishti The Vision Foundation

है कि कोई व्यक्ति कानूनों का उल्लंघन न करे। राज्य की इस धारणा को रात्रिरक्षक राज्य (Night-Watchman State) या प्रहरी राज्य कहा जाता है।

(vi) अर्थव्यवस्था के संबंध में यह विचारधारा 'अहस्तक्षेप के सिद्धांत' (Laissez Faire) की समर्थक है। इसके अनुसार अर्थव्यवस्था मांग और पूर्ति के नियम के अनुसार स्वतः चलने वाली व्यवस्था है जिसमें राज्य की ओर से कोई भी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

(vii) 'स्वतत्वमूलक व्यक्तिवाद' (Possessive Individualism) इस विचारधारा का प्रमुख सिद्धांत है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में निहित शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं का स्वामी है। चूँकि वह इन क्षमताओं का स्वामी है, इसलिए इन क्षमताओं से अर्जित होने वाले सभी लाभों पर उसका नैतिक अधिकार है जिसे उससे छीना नहीं जा सकता।

(viii) 'अनुबंध की स्वतंत्रता' (Freedom of Contract) इनके आर्थिक विचारों का एक और महत्वपूर्ण अंग है। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति से जबरन कोई कार्य नहीं कराया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति कोई भी कार्य करने या न करने हेतु स्वतंत्र है। यदि रोजगार देने वाले तथा उसे स्वीकार करने वाले व्यक्तियों के मध्य सहमति बनती है तो उनकी सहमति की शर्तें अनुबंध के रूप में होंगी। अनुबंध करने तक व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र है किंतु अनुबंध स्वीकार करने के पश्चात् वह उसकी शर्तों से बंध जाता है।

(ix) सम्पत्ति का अधिकार इनकी आर्थिक मान्यताओं में प्रमुख है। लॉक का मानना था कि सम्पत्ति का अधिकार प्राकृतिक अधिकार है जिसे कोई भी राज्य या सरकार नहीं छीन सकती मानव के अधिकारों का सारतत्व है।

(x) जहाँ तक समाज का प्रश्न है, ये चिन्तक आधुनिक दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इनका स्पष्ट मानना है कि व्यक्ति को सभी प्रकार की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। यह तभी संभव होगा जब उसे धार्मिक संस्थाओं, सामाजिक रूढ़ियों इत्यादि से भी पर्याप्त स्वतंत्रता मिले।

2. आधुनिक या सकारात्मक उदारवाद *(Modern Or Positive Liberalism)*

उदारवाद का दूसरा चरण आधुनिक या सकारात्मक उदारवाद है जिसे मोटे तौर पर 1850 ई. से 1950 ई. के मध्य माना जाता है। इस विचारधारा के उदय के पीछे कुछ ठोस परिस्थितियाँ जिम्मेदार थीं। नकारात्मक उदारवाद में अहस्तक्षेप तथा अनुबंध की स्वतंत्रता पर आधारित जिस मुक्त बाजार प्रणाली का समर्थन किया गया था; उसमें मजदूरों को औपचारिक रूप से चाहे समानता व स्वतंत्रता मिली हो किंतु वास्तविक रूप से पूंजीपति उनका शोषण करने में समर्थ थे। मजदूरों की दयनीय स्थिति का परिणाम यह हुआ कि बहुत सारे विचारक समानता व स्वतंत्रता के सकारात्मक विचार प्रस्तुत करने लगे जिसका तात्पर्य था कि समानता और स्वतंत्रता के वास्तविक वितरण के लिए राज्य को पर्याप्त स्थितियाँ जुटानी चाहिएँ ताकि साधारण व्यक्ति भी इन आदर्शों का लाभ सचमुच उठा सके। इस समय समाजवाद के आरंभिक विचारक सेंट साइमन, चार्ल्स फ्यूरिए तथा रॉबर्ट ओवन भी अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। इन्होंने मजदूरों की दुर्दशा दूर करने के लिए पूंजीपतियों की अन्तरात्मा से अपील की। ये तीनों विचारक 'स्वप्नदर्शी समाजवादी' (Utopian Socialists) कहलाते हैं। इनके तुरंत बाद समाजवाद का आक्रामक रूप सामने आया जिसे मार्क्सवाद कहते हैं। मार्क्सवाद ने मजदूरों को पूंजीपतियों के विरुद्ध हिंसक क्रांति करने के लिए प्रेरित किया। इन स्थितियों में उदारवादी चिंतकों को महसूस हुआ कि मुक्त बाजार प्रणाली पर आधारित उनकी विचारधारा अब नहीं चल सकती है। इसलिए उदारवाद में कुछ नए विचारकों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कुछ सीमित करते हुए नई व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। यही व्याख्याएँ सम्मिलित रूप में आधुनिक या सकारात्मक उदारवाद कहलाती हैं। इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक थे- जे.एस. मिल (अंतिम दौर में) तथा लास्की।

सकारात्मक उदारवाद की प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार हैं-

(i) ये चिंतक भी व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक हैं, किंतु ये व्यक्ति को निरपेक्ष स्वतंत्रता नहीं देते हैं। जे.एस. मिल ने स्पष्ट किया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता उसके स्व-विषयक (Self-regarding) कार्यों तक ही सीमित है। उसके जो कार्य अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं, उनमें वह पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है।

(ii) स्वतंत्रता और समानता सिर्फ औपचारिक रूप से दिए जाने वाले सिद्धांत नहीं हैं। इनका वास्तविक महत्व तभी है जब इनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ भी विद्यमान हों।

(iii) समाज के वंचित वर्ग 'तात्विक' (Substantive) रूप से समानता और स्वतंत्रता को उपलब्ध कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उनके लिए संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति अपनाई जाए। इस नीति को 'सकारात्मक कार्यवाही' (Affirmative Action) भी कहा जाता है और इसी से सामाजिक न्याय की स्थिति उत्पन्न होती है।

(iv) स्वत्वमूलक व्यक्तिवाद का सिद्धांत इन्हें पूर्णतः स्वीकार्य नहीं है। इसका मानना है कि व्यक्ति अपनी सभी क्षमताओं को स्वयं अर्जित नहीं करता, इसलिए वह अपनी क्षमताओं से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण लाभ का अकेला स्वामी नहीं हो सकता।

(v) अर्थव्यवस्था के संबंध में इन्होंने 'अहस्तक्षेप सिद्धांत' का विरोध किया और 'न्यूनतम हस्तक्षेप' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। बाज़ार अर्थव्यवस्था को 'नियमित' करने हेतु स्वतंत्र है, किन्तु वह उसे 'नियंत्रित' नहीं करेगा। राज्य इतना हस्तक्षेप अवश्य करेगा कि मुक्त बाज़ार के नियम वंचित वर्ग की मानवीय गरिमा का उल्लंघन न कर सकें।

641, प्रथम तल, मुखर्जी नगर, दिल्ली-9.
दूरभाष : 011-27604128, 47532596, (+91)8130392358-59-60
ई-मेल: drishtiacademy@gmail.com, वेबसाइट: www.drishtithevisionfoundation.com
फेसबुक: https://www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
Copyright – Drishti The Vision Foundation

(vi) सम्पत्ति के अधिकार को इन्होंने भी महत्व दिया किन्तु उतना नहीं जितना नकारात्मक उदारवादियों ने। जे.एस. मिल ने कहा कि सम्पत्ति का अधिकार सीमित होना चाहिए; विशेष रूप से भू-सम्पत्ति के स्वामित्व पर सीमा आरोपित की जानी चाहिए। मिल और लास्की दोनों ने सम्पत्ति के हस्तांतरण पर भारी कर लगाने की वकालत की।

(vii) जहाँ तक राज्य का प्रश्न है, इन विचारकों ने 'रात्रिरक्षक राज्य' के स्थान पर 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) की धारणा प्रस्तुत की। इससे राज्य की शक्तियाँ बढ़ गईं। इनके अनुसार, राज्य का कार्य सिर्फ कानून व्यवस्था बनाए रखना नहीं है बल्कि विभिन्न वर्गों के मध्य अन्तराल कम करना, वंचित वर्गों को बुनियादी जरूरतें मुहैया कराना इत्यादि भी है। यहाँ राज्य की सकारात्मक भूमिका है।

3. स्वेच्छातंत्रवाद *(Libertarianism)*

1950 ई. के बाद विश्व की स्थितियाँ बदलने के कारण पुन: उदारवाद के स्वरूप में संशोधन हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व बैंक और आई.एम.एफ. जैसी संस्थाएँ निर्मित हुई और धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में निजीकरण, उदारीकरण तथा भूमंडलीकरण की शुरुआत हुई। इस समय नकारात्मक उदारवाद की विचारधारा एक बार पुन: नए रूप में उभरी जिसे स्वेच्छातंत्रवाद (Libertarianism) कहा गया। इस सिद्धांत के समर्थकों में चार दार्शनिक प्रमुख हैं- आइज़िया बर्लिन, एफ.ए. हेयक, मिल्टन फ्रायडमैन तथा रॉबर्ट नॉजिक। इनके सामान्य विचार इस प्रकार हैं-

(i) व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए- धर्म से, समाज से, परम्परा से और परिवार से; ताकि वह अपनी नियति स्वयं निर्धारित कर सके।

(ii) 'मुक्त बाजार प्रणाली' न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करने के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है। व्यक्ति समाज के लिए कितना योगदान करता है, इसका सटीक मूल्यांकन करके बाजार उसे उतना ही लाभ प्रदान करता है। अत: वितरणमूलक न्याय प्रदान करने हेतु एकमात्र निष्पक्ष प्रणाली बाजार व्यवस्था है।

(iii) ये चिंतक सामाजिक न्याय के विरोधी हैं। इनका स्पष्ट कहना है कि जब भी राज्य सामाजिक न्याय का प्रयास करता है, तब राज्य की शक्तियाँ बढ़ने से व्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है। फिर, जिन व्यक्तियों से कुछ छीनकर अन्य वर्गों को वितरित किया जाता है, उनकी 'अधिकारिता' (Entitlement) का भी उल्लंघन होता है।

(iv) जहाँ तक राज्य का प्रश्न है, ये राज्य को अधिक शक्तियाँ देने के विरोधी हैं। इनके अनुसार राज्य के मुख्य कार्य हैं-
   (क) कानून व्यवस्था बनाए रखना।
   (ख) वे नियम बनाना जो अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में माने जाएंगे तथा यह देखना कि उन नियमों का पालन होता रहे।
   (ग) जो व्यक्ति मुक्त बाजार प्रतिस्पर्धा में चलने के काबिल न हों, उनके लिए कल्याणकारी उपाय करना।
   (घ) वे सभी कार्य करना जिन्हें बाजार प्रणाली करने में असमर्थ है।

4. समतावाद *(Egalitarianism/Equalitarinism)*

समकालीन उदारवाद की दूसरी शाखा 'समतावाद' कहलाती है। यह शाखा सकारात्मक उदारवाद का विकसित रूप है, जिसने 1950 ई. के बाद स्वेच्छातंत्रवाद के विरुद्ध अपने कई तर्क प्रस्तुत किए। इस वर्ग में मुख्यत: दो विचारक शामिल हैं- सी.बी. मैक्फर्सन तथा जॉन रॉल्स। इन दोनों की मूल मान्यता यह है कि राज्य को कल्याणकारी कार्य तब तक करते रहना चाहिए जब तक निम्न वर्ग भी वैसी स्थितियाँ प्राप्त नहीं कर पाता जैसी उच्च वर्ग की हैं। जॉन रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धांत में एक काल्पनिक युक्ति का प्रयोग करते हुए साबित किया कि वर्तमान समय में उच्च और निम्न वर्ग के जितने अंतराल हैं, वे इतिहास की अतार्किक स्थितियों से पैदा हुए हैं और उन्हें न्यायोचित मानकर नहीं चलाया जा सकता। मैक्फर्सन ने साबित किया कि पूंजीविहीन श्रमिकों के लिए मुक्त बाजार प्रणाली अत्यंत विषमतामूलक है।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

समाजवाद
(Socialism)

समाजवाद (Socialism) वर्तमान विश्व की सबसे प्रसिद्ध विचारधाराओं में से एक है किंतु इसे पूरी स्पष्टता के साथ परिभाषित करना सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि हर समाजवादी विचारक ने समाजवाद की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से की है। समाजवाद का अर्थ इतना अनिश्चित है कि एक विचारक सी.ई.एम. जोड को कहना पड़ा कि "*समाजवाद उस टोपी की तरह है जिसे विभिन्न लोगों ने इतना अधिक पहना है कि अब उसका अपना कोई निश्चित आकार नहीं बचा है।*"

'समाजवाद' शब्द का प्रयोग आमतौर पर तीन अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में यह एक व्यापक विचारधारा है जो समाज के आर्थिक संसाधनों को समाज के सभी वर्गों में समतामूलक रीति से विभाजित करना चाहती है। इस दृष्टि से मार्क्सवाद भी समाजवाद का ही एक उपवर्ग है। दूसरे अर्थ में समाजवाद मार्क्सवाद के अंतर्गत इतिहास का वह चरण है जो पूंजीवाद के बाद क्रांति के परिणामस्वरूप आता है तथा जिसे 'सर्वहारा की तानाशाही' भी कहा जाता है। तीसरे अर्थ में, समाजवाद का आशय मार्क्सवाद से भिन्न समाजवाद के उस रूप से है जो हिंसक क्रांति और वर्ग-संघर्ष जैसे उपायों के स्थान पर लोकतंत्र के मार्ग से आर्थिक समानता साधना चाहता है। आजकल, जब समाजवाद की चर्चा की जाती है तो प्राय: समाजवाद का तीसरा अर्थ ही लिया जाता है जो बिना हिंसक उपायों के समतामूलक समाज की स्थापना से संबंधित है।

समाजवाद के इस रूप में सामान्यत: निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं–

1. सभी समाजवादी मानते हैं कि राज्य या सरकार का काम समाज में आर्थिक समानता (Economic equality) की स्थापना के लिए अधिकाधिक प्रयास करना है। इसलिये, राज्य को ऐसे सभी कदम उठाने चाहिये जो इस उद्देश्य को साधने में सहायक हो सकते हैं; जैसे-प्रगतिशील कराधान (Progressive Taxation), समाज के सभी सदस्यों को काम का अधिकार, नि:शुल्क शिक्षा और नि:शुल्क चिकित्सा जैसे अधिकार।
2. समाजवाद यह नहीं कहता कि व्यक्ति को निजी सम्पत्ति (Private Property) अर्जित करने की बिल्कुल अनुमति न हो; न ही वह इस बात का समर्थक है कि निजी उद्यमशीलता (Private Entrepreneurship) को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया जाए; किंतु वह चाहता है कि उत्पादन के प्रमुख साधन सार्वजनिक स्वामित्व (Public Ownership) में हों तथा उद्यमशीलता (Enterpreneurship) के नाम पर मुक्त बाजार को खुली छूट न दी जाए।
3. समाजवाद के समर्थक औद्योगिक उत्पादन प्रणाली (Industrial Production System) का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि औद्योगिक प्रणाली के अधिकाधिक प्रयोग से मानव समाज की सभी भौतिक जरूरतों को पूरा किया जा सकता है।
4. समाजवादी सामान्यत: धर्म को एक रुढ़िवादी (Orthodox) विचार मानते हैं और चाहते हैं कि मनुष्य की चेतना (Consciousnesss) से धर्म समाप्त हो जाए; किंतु ये लोग मार्क्सवादियों की तरह धर्म को पूरी तरह खारिज नहीं करते। यदि कोई व्यक्ति निजी जीवन में धर्म को मानना चाहे तो इन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

जहाँ तक भारतीय राजनीति का प्रश्न है, उस पर कई समाजवादी चिन्तकों का असर है। स्वाधीनता संग्राम के दौर में आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया जैसे नेताओं के अलावा पंडित जवाहरलाल नेहरू भी समाजवाद के समर्थकों में शामिल थे। भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया में समाजवाद के प्रभाव से ही कई नीति निर्देशक तत्त्वों (Directive Principles) को स्वीकार किया गया। 1976 में संविधान के 42वें संशोधन में तो संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में ही 'समाजवाद' (Socialism) शब्द जोड़ दिया गया। वर्तमान में भारत के कई राजनीतिक दल खुद को समाजवादी विचारधारा का वाहक बताते हैं, जैसे समाजवादी पार्टी (SP)। जनता पार्टी और उसके विभिन्न धड़े भी समाजवाद को ही अपनी मूल विचारधारा बताते हैं, जैसे जनता दल एकीकृत (JDU- Janta Dal United), राष्ट्रीय जनता दल (RJD- Rashtiya Janta Dal) इत्यादि।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

मार्क्सवाद और समाजवाद में तुलना

	मार्क्सवाद	समाजवाद
1. आर्थिक पक्ष	मार्क्सवाद के अनुसार, आर्थिक पक्ष अर्थात् उत्पादन प्रणाली से ही शेष सभी व्यवस्थाएँ निर्धारित होती हैं। शेष व्यवस्थाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।	समाजवाद के अनुसार, आर्थिक पक्ष का सर्वाधिक प्रभाव होता है; किंतु शेष व्यवस्थाओं का पूर्ण निर्धारण उसी से नहीं होता। शेष व्यवस्थाएँ कुछ हद तक अर्थव्यवस्था से स्वायत्त हो सकती हैं।
2. राज्य	(क) अनिवार्यत: शोषण का उपकरण है। (ख) साम्यवाद में समाप्त हो जाएगा। (ग) समाजवाद में 'सर्वहारा की तानाशाही' के रूप में राज्य होगा।	(क) कल्याणकारी भी हो सकता है। (ख) राज्य का अस्तित्व रहना चाहिये। (ग) तानाशाही अस्वीकार्य है, चाहे वह सर्वहारा की हो।
3. क्रांति	अनिवार्य है; क्रांति का स्वरूप अनिवार्यत: हिंसात्मक होगा।	न अनिवार्य है, न ही अधिक संभावना है।
4. वर्ग की धारणा	(क) हर समाज में हर काल में दो विरोधी वर्ग होते हैं, (ख) मध्य वर्ग संक्रमणशील और अस्थायी है। (ग) वर्गों के परस्पर विरोधी हित होते हैं, अत: संघर्ष ही किया जा सकता।	(क) दो से अधिक वर्ग हो सकते हैं; (ख) मध्य वर्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है। (ग) वर्ग-सहयोग की भावना से इन्कार नहीं एकमात्र संबंध है।
5. धर्म	(क) मिथ्या चेतना है; अफीम के समान है। (ख) समाजवाद में धर्म प्रतिबंधित रहेगा और साम्यवाद में लुप्त हो जाएगा। (ग) राजनीति से धर्म पूर्णत: अलग होना चाहिए।	(क) धर्म अवांछित है किंतु इसका दमन नहीं होना चाहिए। (ख) व्यक्तिगत जीवन में इसकी अनुमति होनी चाहिए।
6. राष्ट्र	(क) राष्ट्रवाद एक मिथ्या चेतना है जो वास्तविक समस्या से ध्यान भटकाती है। (ख) मार्क्सवाद का विश्वास वैश्विक व्यवस्था में है, राष्ट्रवाद में नहीं। (ग) आगे चलकर लेनिन, स्टालिन और माओ ने राष्ट्रवाद को अपनी स्थितियों के अनुसार स्वीकार किया।	राष्ट्रवाद और समाजवाद में कोई अनिवार्य अंतर्विरोध नहीं है। दोनों व्यवस्थाएँ साथ-साथ चल सकती हैं।
7. सम्पत्ति	निजी सम्पत्ति का पूर्ण निषेध; सारी संपत्ति सार्वजनिक अर्थात् पूरे समाज की होनी चाहिए। व्यक्तित्व भी समाज से निर्मित है, अत: उस पर व्यक्ति का पूर्ण अधिकार नहीं है।	(क) उत्पादन के वृहद् साधन सार्वजनिक होंगे लेकिन उत्पादन की लघु तथा गैर-सामरिक इकाइयाँ व्यक्तिगत हो सकती हैं। (ख) सीमित मात्रा में निजी सम्पत्ति को स्वीकृति। अर्जित सम्पत्ति को स्वीकार करते हैं पर माता-पिता से प्राप्त सम्पत्ति के लिए उच्च कराधान की बात करते हैं।
8. लोकतंत्र	(क) उदारवादी लोकतंत्र का खण्डन क्योंकि उदारवादी लोकतंत्र धनतंत्र (Plutocracy) है। (ख) 'सर्वहारा की तानाशाही' को ही असली लोकतंत्र कहते हैं क्योंकि इसी में आम जनता सचमुच शासन करती है।	(क) उदार लोकतंत्र को वितरणमूलक न्याय के साधन के रूप में स्वीकारता है। (ख) तानाशाही को स्वीकार नहीं करता।
9. स्वतंत्रता	(क) सर्वहारा की तानाशाही के संक्रमण काल में वैयक्तिक स्वतंत्रता का पूर्ण निषेध।	(क) किसी भी प्रकार की तानाशाही और स्वतंत्रता के दमन को स्वीकृति नहीं।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

समाजवाद के विभिन्न रूप *(Various forms of Socialism)*

समाजवाद के बहुत से रूप हैं। यूरोप के विभिन्न देशों में यह वहाँ की सामाजिक स्थितियों के अनुसार रूप बदलता रहा है। एक अर्थ में मार्क्सवाद भी समाजवाद का ही एक रूप है जो वर्ग संघर्ष और हिंसक क्रांति जैसे साधनों पर बल देता है। समाजवाद के कुछ रूप मार्क्सवाद के उद्भव से पहले दिखाई पड़ते हैं तो बहुत से अन्य रूप मार्क्सवाद के बाद। मार्क्स से पहले के समाजवाद को प्राय: स्वप्नदर्शी समाजवाद (Utopian Socialism) कहा जाता है। उन्हें यह नाम कार्ल मार्क्स ने ही दिया था क्योंकि उसके अनुसार, इन समाजवादियों के पास समाजवाद के अमूर्त सपने तो थे पर उन्हें पूरा करने के लिए कोई निश्चित और ठोस कार्ययोजना नहीं थी।

आगे चलकर, जब मार्क्सवाद यूरोप में काफी प्रसिद्ध हो गया तो कुछ विचारक दावा करने लगे कि समाजवाद का वास्तविक रूप मार्क्सवाद ही है। किंतु, 1860 के आसपास इंग्लैंड और अमेरिका जैसे देशों में उदार लोकतंत्र के माध्यम से वंचित वर्गों के पक्ष में कुछ बड़ी घटनाएँ घटीं, जैसे अमेरिका में अब्राहम लिंकन ने मजबूत कदम उठाते हुए दास व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इसी समय, इंग्लैंड में भी 1867 में मजदूरों को मताधिकार प्राप्त हुआ जिससे वे अपने पक्ष में कानून बनवाने में समर्थ हो गए। इन परिवर्तनों से लगने लगा कि समाजवाद लाने के लिए हिंसक क्रांति एकमात्र या अनिवार्य विकल्प नहीं है, अगर वंचित समुदायों के लोग राजनीतिक स्तर पर दबाव-समूहों के रूप में संगठित हो जाएँ तो लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से धीरे-धीरे समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। इस दौर में जर्मनी और इंग्लैंड में समाजवाद के कुछ ऐसे रूप (जैसे जर्मन सामाजिक लोकतंत्र, संशोधनवाद, फेबियन समाजवाद, समष्टिवाद तथा श्रेणी समाजवाद) विकसित हुए जो अलग-अलग होते हुए भी इस बिंदु पर सहमत हैं कि समाजवाद की स्थापना शांतिपूर्ण तरीकों से की जा सकती है। सिर्फ फ्राँस में, वहाँ की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण समाजवाद का एक ऐसा रूप (श्रमसंघवाद) विकसित हुआ जिसमें हिंसा को उचित माना गया।

जिस समय मार्क्सवाद के हिंसक साधनों के विरोध में समाजवाद के ये सभी रूप उभर रहे थे, उसी समय मार्क्सवाद के भीतर भी एक नया संप्रदाय विकसित हुआ जिसे नवमार्क्सवाद कहा जाता है। नवमार्क्सवादी भी वर्ग संघर्ष और हिंसक क्रांति को अस्वीकार करते हैं पर इनके चिंतन का मूल आधार मार्क्सवाद ही है। ये विशेष रूप से युवा मार्क्स के अलगाव (Alienation) जैसे विचारों से प्रभावित हैं और पूंजीवाद के बदलते हुए चरित्र के मूल में छिपे शोषणकारी पक्षों को उभारते हैं। मार्क्सवाद के भीतर जो विचारक क्रांति और वर्ग संघर्ष पर बल देते हैं, उन्हें पारंपरिक मार्क्सवादी (Classical Marxist) कहा जाता है। लेनिन, स्टालिन और माओ को इसी वर्ग में रखा जाता है।

समाजवाद के इन सभी प्रकारों को निम्नलिखित रेखाचित्र से समझा जा सकता है। उसके बाद इन सभी प्रकारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। (मार्क्सवाद के दोनों प्रकारों का परिचय 'साम्यवाद या मार्क्सवाद' टॉपिक में दिया जा चुका है। समाजवाद के शेष प्रकारों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।)

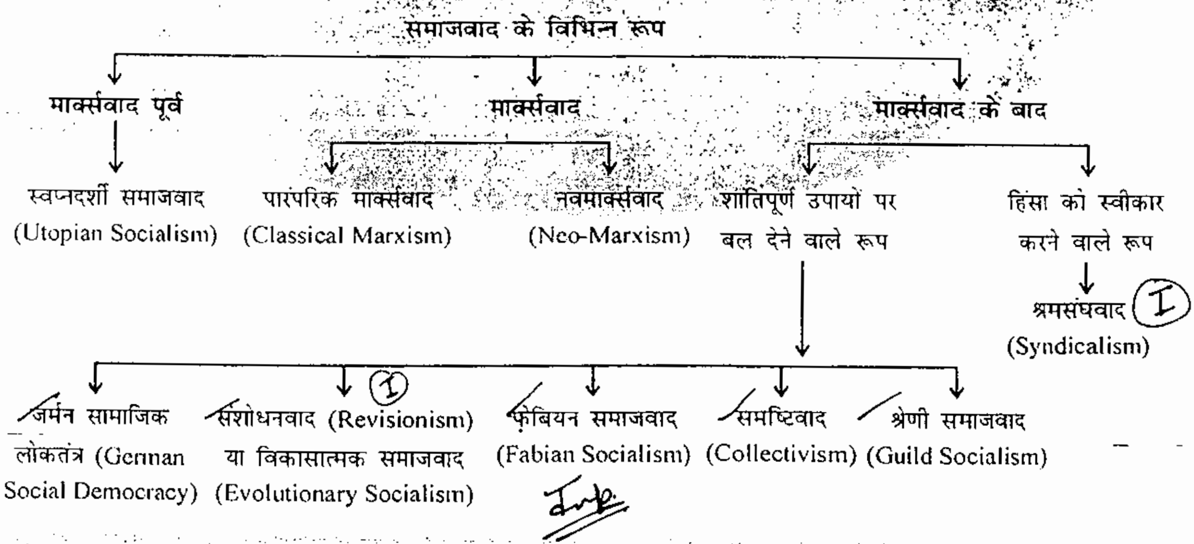

1. स्वप्नदर्शी समाजवाद *(Utopian Socialism)*

मार्क्स ने अपने से पहले के समाजवादी विचारों को स्वप्नदर्शी समाजवाद की संज्ञा दी है। इसका कारण यह है कि ये विचारक समाज में फैली हुई गरीबी और विषमता को दूर तो करना चाहते थे किंतु इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उनके पास कोई व्यावहारिक रणनीति नहीं थी। वे आमतौर पर अमीर वर्ग के लोगों से निवेदन करते थे कि गरीब किसानों और मजदूरों की दशा पर ध्यान दें।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

स्वप्नदर्शी समाजवाद में तीन विचारकों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है- सेंट साइमन, चार्ल्स फ्यूरिए और रॉबर्ट ओवन।

सेंट साइमन *(Saint Simon)*

सेंट साइमन के समाजवादी विचार बहुत स्पष्ट और निश्चित नहीं हैं, पर इतना ज़रूर है कि उसे पूंजीवाद से ज़्यादा समस्या सामंतवाद से थी। उसका मानना था कि एक अच्छी व्यवस्था वह होगी जिसमें बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण होगा; सबको क्षमता के अनुसार काम तथा योग्यता के अनुसार वेतन मिलेगा; राज्य का कार्य लोक-कल्याण करना होगा, न कि दूसरे देशों से युद्ध करना या उच्च वर्ग के हितों की रक्षा करना। वह यह भी चाहता था कि उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की जगह सार्वजनिक स्वामित्व की व्यवस्था लागू हो।

चार्ल्स फ्यूरिए *(Charles Fourier)*

चार्ल्स फ्यूरिए का मानना था कि जिस तरह प्राकृतिक व्यवस्था गुरुत्वाकर्षण जैसे निश्चित नियमों के अनुसार कार्य करती है, वैसे ही सामाजिक व्यवस्था को भी निश्चित नियमों के अनुसार पुनर्गठित किया जाना चाहिए। इस संबंध में उसने सुझाव दिया कि समाज को छोटे-छोटे समुदायों में संगठित किया जाना चाहिए जो सामान्य स्वामित्व (Common Ownership) के सिद्धांत के अनुसार कार्य करेंगे। निजी संपत्ति का निषेध तो नहीं होगा, पर अमीर-गरीब का अंतर अपने आप महत्त्वहीन हो जाएगा। ऐसी व्यवस्था में राज्य की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि समाज स्वयं ही सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेगा। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा तथा रोजगार की गारंटी होगी तथा सभी को अपनी योग्यता और श्रम के अनुसार उपलब्धियाँ हासिल होंगी। फ्यूरिए का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत 'आकर्षक श्रम का सिद्धांत' (Principle of Attractive Labour) है जिसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य सौंपा जाएगा जो उसे पसंद हो। इसके अलावा, फ्यूरिए ने विवाह और परिवार के ढाँचे में विद्यमान विसंगतियों पर भी चोट की। कई मामलों में फ्यूरिए के विचार मार्क्सवाद को प्रभावित करते हुए दिखाई पड़ते हैं, जैसे राज्य के अनावश्यक होने का विचार, प्रत्येक व्यक्ति को रुचि के अनुसार कार्य देने का विचार तथा विवाह और परिवार के ढाँचों में निहित विषमताओं पर चोट।

रॉबर्ट ओवन *(Robert Owen)*

रॉबर्ट ओवन मार्क्सवाद-पूर्व समाजवाद के सबसे महत्त्वपूर्ण चिंतक माने जाते हैं। इन्होंने सिर्फ चिंतन करने की बजाय कुछ प्रयोगों के माध्यम से अपने समाजवादी विचारों की व्यावहारिकता को सिद्ध करने का प्रयास भी किया। उसने प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित व्यापार प्रणाली की आलोचना की और सहयोग पर आधारित व्यापार प्रणाली को स्थापित करने का सुझाव दिया। उसने 'मॉडल कॉटन मिल्स' नामक सहकारी उद्यम (Co-operative Enterprise) को स्थापित करके सिद्ध किया कि आपसी सहयोग तथा मजदूरों के अनुकूल नीतियों के माध्यम से भी बाज़ार में टिका जा सकता है। इस प्रयोग के आधार पर ओवन ने दावा किया कि यदि सहकारिता पर आधारित गाँवों की स्थापना की जाए जिनमें सभी व्यक्ति गाँव की आय में हिस्सेदार हों तो ऐसी व्यवस्था से अमीरों और गरीबों का अंतर काफी हद तक दूर हो जाएगा। ओवन के अन्य विचारों में धर्म का विरोध, निजी संपत्ति का निषेध तथा विवाह व्यवस्था का विरोध शामिल हैं। वह उत्पादन के प्रमुख साधनों पर समाज के स्वामित्व का समर्थक है। उसका मानना है कि अगर वस्तुओं का उत्पादन और वितरण सभी मनुष्यों की ज़रूरतों के अनुसार हो तो समाज की अधिकांश समस्याओं का समाधान अपने आप हो जाएगा। गौरतलब है कि मार्क्सवाद पर ओवन के विचारों का प्रभाव भी खोजा जा सकता है। उदाहरण के लिए, धर्म, विवाह तथा निजी संपत्ति का विरोध ओवन की तरह मार्क्सवाद में भी दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार, मनुष्यों की ज़रूरतों के अनुसार उत्पादन और वितरण का सिद्धांत दोनों विचारों में समान रूप से विद्यमान है।

2. जर्मन सामाजिक लोकतंत्र *(German Social Democracy)*

1848 ई. में मार्क्स और एंजल्स ने 'कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो' का प्रकाशन किया था जिसमें वर्ग संघर्ष और हिंसक क्रांति को अनिवार्य बताया गया था। यह सिद्धांत 1840 के दशक की परिस्थितियों को केंद्र में रखकर बनाया गया था जिसे इंग्लैंड में 'भूखा दशक' कहा जाता है। इस समय राज्य का स्वरूप पूर्णतः शोषणकारी तथा विशिष्टवर्गवादी (Elitist) था और उसे जनसाधारण की समस्या से कोई लेना-देना नहीं था। किंतु, 1850 के दशक में यूरोप की परिस्थितियाँ बदलने लगीं और कुछ ऐसे परिवर्तन दिखने लगे जो लोक-कल्याणकारी राज्य के उद्भव की ओर इशारा करते थे। इन परिस्थितियों में कुछ विचारकों को लगने लगा कि हिंसक क्रांति की जगह शांतिपूर्ण उपायों से भी समाजवादी आदर्शों की उपलब्धि की जा सकती है। ऐसा पहला प्रसिद्ध विचार जर्मनी में 'जर्मन सामाजिक लोकतंत्र' के नाम से विकसित हुआ। इसके समर्थकों में सबसे महत्त्वपूर्ण विचारक फ़र्डिनेंड लासाल (Ferdinand Lassalle) थे।

फ़र्डिनेंड लासाल (तथा जर्मन सामाजिक लोकतंत्र) के वैचारिक योगदान को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है-

(i) लासाल मार्क्सवाद के ऐतिहासिक भौतिकवाद के इस निष्कर्ष से सहमत है कि निकट भविष्य में पूंजीवाद का पतन और मजदूर वर्ग का उत्थान होना अनिवार्य है, परंतु इसकी प्रक्रिया और राज्य की भूमिका जैसे बिंदुओं पर वह मार्क्सवाद से अलग रास्ता चुनता है।

641, प्रथम तल, मुखर्जी नगर, दिल्ली-9.
दूरभाष : 011-27604128, 47532596, (+91)8130392358-59-60
ई-मेल: drishtiacademy@gmail.com, वेबसाइट: www.drishtithevisionfoundation.com
फेसबुक: https://www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
Copyright – Drishti The Vision Foundation

(ii) उसने पूंजीवाद के अंतर्गत मजदूर के शोषण की व्याख्या करते हुए एक नया सिद्धांत विकसित किया जिसे 'मजदूरी का लौह नियम' (Iron Law of Wages) कहा जाता है। इस सिद्धांत का अर्थ है कि पूंजीवाद के अंतर्गत मजदूर की औसत मजदूरी सिर्फ इतनी ही होती है कि उससे उसका निर्वाह हो जाए, उससे अधिक नहीं। ऐसा मांग और पूर्ति के नियम के कारण होता है।

(iii) एक ऐसे समाजवाद की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें वस्तुओं का उत्पादन और नियंत्रण कुछ सहकारी समितियों के हाथ में हो तथा निर्णय प्रक्रिया में मजदूरों की भी प्रभावी हिस्सेदारी हो। ऐसा होने पर मजदूरों को अपनी मेहनत का पूरा मूल्य मिलेगा और वे सिर्फ निर्वाह स्तर पर काम करने को मजबूर नहीं होंगे।

(iv) समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसक क्रांति की आवश्यकता नहीं है। इसकी जगह, ज्यादा व्यावहारिक उपाय यह है कि सभी मजदूर एक राजनीतिक दल के रूप में संगठित हो जाएँ और सरकार पर दबाव बनाकर सार्वजनिक वयस्क मताधिकार की प्रणाली शुरू कराएँ। चूँकि मजदूर वर्ग की जनसंख्या ज्यादा है, इसलिए लोकतंत्र के भीतर पूंजीपति उसकी शक्ति को नहीं रोक सकेंगे। राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो जाने पर मजदूर वर्ग के संसद सदस्य समाजवाद स्थापित करने वाले कानून बनाएंगे जिससे आर्थिक व्यवस्था भी उनके पक्ष में आ जाएगी। राज्य को समाप्त नहीं किया जाएगा बल्कि उसे लोक-कल्याणकारी स्वरूप दिया जाएगा। इसलिए, वर्तमान में मजदूर आंदोलन का तात्कालिक लक्ष्य यही होना चाहिए कि विधानमंडल में बहुमत प्राप्त किया जाए।

3. संशोधनवाद *(Revisionism)*

संशोधनवाद का संबंध जर्मनी के ही एक दूसरे विचारक एडवर्ड बर्नस्टीन से है। बर्नस्टीन ने 1896 से 1898 के दौरान एक लेखमाला प्रकाशित की जिसमें उसका प्रमुख विचार था कि बदली हुई परिस्थितियों में मार्क्सवाद में कुछ संशोधन किए जाने चाहिएँ। लासाल ने मार्क्सवाद का विरोध नहीं किया था पर बर्नस्टीन ने बहुत से तर्क देकर साबित किया कि वर्तमान परिस्थितियों में मार्क्सवाद के कई विचार अप्रासंगिक हो गए हैं। उसने अपने विचार को 'विकासवादी समाजवाद' (Evolutionary Socialism) कहा और इसी शीर्षक से उसकी एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई, पर मार्क्सवादियों ने उसकी आलोचना करते हुए उसे संशोधनवादी कहा और आगे चलकर यही नाम ज्यादा प्रसिद्ध हो गया।

बर्नस्टीन ने मार्क्सवाद की आलोचना तथा विकासात्मक समाजवाद के समर्थन में निम्नलिखित प्रमुख तर्क दिए-

(i) मार्क्स ने अपने से पहले के समाजवादियों को स्वप्नदर्शी बताया और अपने विचार को वैज्ञानिक समाजवाद कहा जबकि सच यह है कि मार्क्स भी कुछ मामलों में स्वप्नदर्शी ही है। वह जिस तरह की आकस्मिक और वैश्विक क्रांति की कल्पना करता है, वह यथार्थवादी न होकर काल्पनिक अवधारणा ही है। निकट भविष्य में सर्वहारा क्रांति की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती।

(ii) मार्क्स का दावा था कि पूंजीवाद जैसे-जैसे प्रबल होगा, वैसे-वैसे समाज का ध्रुवीकरण दो विरोधी वर्गों में होता जाएगा। सच यह है कि समाज में वर्ग विभेद बढ़ रहा है, ध्रुवीकरण नहीं। मध्यवर्ग, जिस पर मार्क्स ने ध्यान नहीं दिया था, बढ़ते-बढ़ते समाज का सबसे बड़ा वर्ग बनने की ओर अग्रसर है।

(iii) मार्क्स का दावा था कि प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने के साथ पूंजीपतियों की संख्या कम होती जाएगी, मजदूरों का शोषण बढ़ता जाएगा और वर्ग संघर्ष में तीव्रता आती जाएगी। सच यह है कि मजदूरों की स्थितियाँ सुधरती जा रही हैं, पूंजीपतियों की संख्या कम होने की बजाय बढ़ती जा रही है और वर्ग संघर्ष भी पहले की तुलना में कम ही हुआ है, ज्यादा नहीं।

(iv) मार्क्स का 'अधिशेष मूल्य का सिद्धांत' भी अव्यावहारिक है। कोई भी समाज मूल्य में होने वाली संपूर्ण वृद्धि मजदूर को नहीं सौंप सकता।

(v) मजदूर वर्ग की तानाशाही को भी उचित नहीं माना जा सकता। कोई भी बहुसंख्यक वर्ग अगर अल्पसंख्यक वर्ग का दमन करता है तो यह अपने आप में गलत है। राज्य का उचित स्वरूप लोकतांत्रिक ही हो सकता है क्योंकि उसमें समाज के सभी वयस्क नागरिक निर्णयों में हिस्सेदार बनते हैं।

(vi) मार्क्स का यह विचार कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता, अब निरर्थक हो गया है। जिस समय मजदूरों को राजनीतिक और वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं थे, उस समय यह बात अर्थपूर्ण थी क्योंकि किसी भी राज्य में मजदूरों का शोषण ही होता था और उन्हें नागरिकों वाले अधिकार नहीं मिलते थे। अब मजदूरों को मताधिकार तथा अन्य सभी महत्त्वपूर्ण अधिकार मिल चुके हैं। इसलिए, आज के समय में राष्ट्र के प्रति मजदूरों की भी वही ज़िम्मेदारी बनती है, जो कि पूंजीपतियों की।

4. फ़ेबियन समाजवाद *(Fabian Socialism)*

समाजवाद की चर्चा के दौरान फ़ेबियन समाजवाद की चर्चा करना विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय संविधान पर जिस समाजवाद का सबसे अधिक प्रभाव है, वह इंग्लैंड का फ़ेबियन समाजवाद ही है। गौरतलब है कि कार्ल मार्क्स ने अपने जीवन के आखिरी तीस साल लंदन में ही गुज़ारे थे पर इंग्लैंड के समाज पर तब भी मार्क्सवाद का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। जिस समय

Copyright -- Drishti The Vision Foundation

जर्मनी में एडवर्ड बर्नस्टीन 'विकासात्मक समाजवाद' की रूपरेखा बना रहा था, लगभग उसी समय इंग्लैंड में उससे मिलता-जुलता समाजवाद उभर रहा था जिसे फेबियन समाजवाद के नाम से जाना जाता है।

फ़ेबियन समाजवाद की वैचारिक शुरुआत 1884 ई. में 'फेबियन सोसायटी' के गठन के साथ हुई थी और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में इसका महत्त्व काफ़ी बढ़ गया था। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, सिडनी वैब, ग्रांहम वैलेस, ऐनी बेसेंट, रैम्ज़े मैकडॉनल्ड आदि इसके सदस्यों में शामिल थे। इस विचारधारा पर मार्क्सवाद की तुलना में जे.एस. मिल जैसे विचारकों का ज़्यादा प्रभाव था। ब्रिटेन की लेबर पार्टी (Labour Party) का जन्म इसी विचारधारा के आधार पर हुआ। ध्यातव्य है कि 1900 ई. में लेबर पार्टी के गठन के समय इसके संविधान का प्रमुख अंश 'सिडनी वैब' (Sidney Webb) ने ही लिखा था।

फ़ेबियन सोसायटी का नाम एक प्रसिद्ध रोमन सेनापति क्विन्टस फ़ेबियस मैक्सिमस (Quintus Fabius Maximus) के नाम पर पड़ा है जिसने हेनीबॉल (Hannibal) के साथ हुए प्रसिद्ध युद्ध को एक विशेष रणनीति से जीता था। रणनीति यह थी कि जब तक सही मौका न मिले, तब तक इन्तज़ार करना चाहिये और जैसे ही सही मौका मिले, तभी पूरी शक्ति से प्रहार करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह था कि अभी पूंजीवाद से सीधे तौर पर संघर्ष करना निरर्थक है क्योंकि अभी हमारी शक्ति उतनी नहीं है। इसलिये, फ़ेबियन सोसायटी के सदस्यों ने धीमे प्रयासों, विशेषत: विधि-निर्माण के लिए आंदोलन चलाने तथा समाज की चेतना बदलने के माध्यम से समाजवाद की स्थापना का प्रयास किया। उन्होंने ज़मींदारों की अंधाधुंध आय के खिलाफ़ आन्दोलन चलाया, 1906 में न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages) की घोषणा करवाने का सफल आन्दोलन चलाया तथा 1911 में सभी नागरिकों को नि:शुल्क चिकित्सा (Free health care) के अधिकार के लिये बड़ा आन्दोलन चलाया। इन्होंने एडम स्मिथ के पूंजीवादी अर्थशास्त्र (Capitalist Economics) के विरोध में सहकारी अर्थशास्त्र (Cooperative Economics) की धारणा प्रस्तुत की तथा अपने समूह के कुछ धन से 'लंदन स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स' (London School of Economics) की स्थापना की। इनका बल इस बात पर था कि शिक्षा और संस्कृति के तंत्र में प्रयास करते हुये समाज की चेतना (Society's Consciousness) में ऐसे परिवर्तन लाये जाने चाहियें कि पूरा समाज, विशेषत: मध्यवर्ग शोषण के तंत्र को समझ सके, तथा समाजवाद की ज़रूरत महसूस कर सके। इन्होंने समाज को यह समझाने की कोशिश की कि समाजवादी होना उतना ही आसान है जितना कि उदारवादी (Liberal) या रूढ़िवादी (Conservative) होना। इन्हें विश्वास था कि चेतना को यह परिवर्तन हो जाने के बाद पूंजीवाद से सीधे-सीधे लड़ने का सही समय आ जायेगा।

फ़ेबियनवादियों ने पूंजीपतियों की जगह ज़मींदारों को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया क्योंकि इन ज़मींदारों ने बड़ी-बड़ी जागीरें बना रखी थीं जबकि समाज के बड़े वर्ग के पास कोई संपत्ति नहीं थी। इससे पूर्व जे.एस. मिल तथा टी.एच. ग्रीन आदि सकारात्मक उदारवादी विचारकों ने सामाजिक अन्याय की जड़ें भूमि के स्वामित्व में देखी थीं, पूंजीवाद में नहीं। फ़ेबियनवाद ने इसी से प्रेरणा ग्रहण की। गौर करने की बात है कि फ़ेबियनवादी पूंजी या लाभ को ऐसी वस्तु नहीं मानते जिसे पूंजीपति ने मज़दूर की मजदूरी से चुरा लिया हो। इस बिंदु पर वे मार्क्स से असहमत हैं। उनका मानना है कि पूंजीपति अपने उद्यम और साधनों के बल पर समाज का लाभ पहुँचाता है और उसे उसका पारिश्रमिक 'लाभ' के रूप में मिलता है जो कि उसकी 'अर्जित आय' है। फ़ेबियन समाजवादियों के प्रहार का वास्तविक लक्ष्य भूमि से प्राप्त होने वाली 'अनर्जित आय' (Unearned Income) अर्थात् बिना मेहनत की आय है। उनकी राय है कि यह आय ज़मींदार से वापस लेकर पूरे समाज को हस्तान्तरित कर देनी चाहिए क्योंकि भूमि का मूल्य इसलिए है कि समाज को उसकी ज़रूरत है।

फ़ेबियन समाजवाद का असली योगदान सिद्धांत से ज़्यादा व्यवहार के क्षेत्र में है। यह एक मध्यवर्गीय तथा बुद्धिजीवियों का आंदोलन था, मजदूरों या किसानों का नहीं। अपने मध्यवर्गीय चरित्र के कारण यह इंग्लैंड के मध्यवर्ग को यह समझाने में सफल रहा कि समाजवाद कोई अजीबोगरीब विचार नहीं है। इसके अलावा, इंग्लैंड के संसदीय लोकतंत्र को आम जनता के नज़दीक पहुँचाने के कारण भी इसका महत्त्व है।

फ़ेबियन समाजवाद को समझना इसलिये भी ज़रूरी है कि जवाहरलाल नेहरू पर समाजवाद के इसी प्रारूप का प्रमुख प्रभाव था। उनकी रणनीतियों में भी वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific Temper) का विकास, लोक कल्याणकारी राज्य (Welfare state) जैसी योजनाओं का खासा महत्त्व था।

5. समष्टिवाद *(Collectivism)*

फ़ेबियनवाद की ही प्रेरणा से इंग्लैंड तथा आसपास के कुछ देशों में एक मध्यवर्गीय समाजवादी आंदोलन शुरू हुआ जिसे समष्टिवाद (Collectivism) कहा गया। इसे 'राज्य समाजवाद' (State Socialism) भी कहा जाता है। यह किसी विशेष दार्शनिक या विचारक की विचारधारा नहीं है। इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम और स्वीडन के कई अलग-अलग विचारकों से इसका संबंध जोड़ा जाता है।

समष्टिवाद की मूल मान्यता यह है कि समस्त 'मूल्य' का जन्मदाता समाज है। उदाहरण के लिए, भूमि का मूल्य सिर्फ इसलिए है कि समाज को उसकी ज़रूरत है। जहाँ समाज की ज़रूरतें ज़्यादा होती हैं, वहाँ भूमि या वस्तुओं के मूल्य भी ज़्यादा हो जाते हैं। चूँकि समस्त 'मूल्य' का जन्म समाज के हाथों होता है, इसलिए उस पर समाज का ही नियंत्रण और अधिकार होना चाहिए,

Copyright – Drishti The Vision Foundation

थोड़े से ज़मींदारों या पूंजीपतियों का नहीं जो अपने लाभ के लिए सामाजिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करते हैं। यह तभी हो सकता है जब समाज को लाभ पहुँचाने वाली सार्वजनिक सेवाएँ, जैसे सड़कें, रेलमार्ग, नहरें तथा खानें समुदाय के ही अधीन हों। पर, चूँकि समुदाय इस विशाल कार्य को अपने आप संभालने में समर्थ नहीं, इसलिए उसके पास कोई ऐसा प्रतिनिधि संगठन होना चाहिए जिसमें सबकी इच्छा (अर्थात् 'सामूहिक इच्छा') को अभिव्यक्ति मिले, जो इसी 'सामूहिक इच्छा' के निर्देशों के अनुसार काम करे और समाज द्वारा उत्पन्न मूल्यों को संपूर्ण समाज के हित में नियोजित करे। समष्टिवादियों की दृष्टि में यह संगठन राज्य ही हो सकता है। उनका आदर्श लोकतांत्रिक राज्य का है, जिसमें सत्ता पूरे समुदाय के प्रतिनिधियों के हाथों में रहेगी और उनकी सहायता के लिए विशेषज्ञ प्रशासक नियुक्त किए जाएंगे। ऐसी व्यवस्था मजदूरों को पूंजीपतियों की मनमानी से मुक्त करा सकेगी।

भारत में समाजवाद के रूप *(Forms of Socialism in India)*

अगर समाजवाद को उसके मूल दर्शन के स्तर पर देखा जाए तो वह न तो सिर्फ आधुनिक काल की विचारधारा है और न ही वह सिर्फ पश्चिमी देशों तक सीमित है। भारतीय संस्कृति में कई ऐसे तत्व विद्यमान हैं जो किसी न किसी स्तर पर समाजवादी मूल्यों से संबंध रखते हैं। भारत के कई दर्शनों में 'अपरिग्रह' (धन व भौतिक सुविधाओं को एकत्रित न करना) तथा 'अस्तेय' (अन्य व्यक्तियों के धन व वस्तुओं की चोरी न करना) जैसे नैतिक आदर्श प्रस्तावित किए गए हैं जो गहरे स्तर पर समाजवाद के इस आदर्श से संगति रखते हैं कि आर्थिक संसाधनों का वितरण समतामूलक ढंग से होना चाहिए। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे आदर्श भी समाजवाद के मूल्यों से जुड़ते हैं।

आधुनिक काल में जब भारतीय विचारकों ने मार्क्सवाद तथा समाजवाद के अन्य प्रकारों को जाना तो स्वाभाविक रूप से उन पर इन विचारों का असर पड़ा। दूसरी तरफ, वे भारतीय संस्कृति में मौजूद समाजवादी मूल्यों से भी प्रभावित थे। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने समाजवाद के पश्चिमी और भारतीय प्रारूपों का संश्लेषण कर दिया और नए तरीके का समाजवाद प्रस्तावित किया। नीचे कुछ भारतीय समाजवादियों के विचारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है-

1. आचार्य नरेन्द्र देव

आचार्य नरेन्द्र देव पहले विचारक हैं जिन्होंने भारतीय शैली में समाजवाद को विकसित किया। ये कांग्रेस समाजवादी दल के प्रमुख सिद्धांतकार थे और वैचारिक स्तर पर लोकतांत्रिक समाजवाद के निकट थे। आगे चलकर ये 'सोशलिस्ट पार्टी' से जुड़े और बाद में उसी की उत्तराधिकारी 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' से अपनी मृत्यु (1956) तक जुड़े रहे। हिंदी समर्थक आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदारी के लिए भी इन्हें जाना जाता है। इनके प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं-

(i) इन्होंने मार्क्सवाद और गांधीवाद का मिश्रण किया। इनके अनुसार मार्क्स ने चेतना को कम महत्व दिया है, जबकि गांधी ने भौतिकता को। इनका समाजवाद दोनों पक्षों का संतुलन करता है।

(ii) समाजवाद भारत के लिए नया विचार नहीं है। भारतीय संस्कृति में 'आध्यात्मिक समाजवाद' (Spiritual Socialism) को हमेशा माना गया है। आज ज़रूरत इस बात की है कि हम आध्यात्मिक समाजवाद की उपलब्धि के लिए भौतिक साधनों के विकास पर बल दें।

(iii) साम्राज्यवाद और पूंजीवाद दोनों का विरोध करना आवश्यक है क्योंकि दोनों ही मानवीय गरिमा के विरुद्ध हैं। साम्राज्यवाद एक देश का दूसरे देश द्वारा शोषण है जबकि पूंजीवाद एक वर्ग का दूसरे वर्ग द्वारा।

(iv) वर्गों में सहयोग का नहीं, संघर्ष का ही संबंध वास्तविक है; किंतु वर्ग-संघर्ष के लिए हिंसा का सहारा नहीं लिया जा सकता।

(v) समाजवाद का विकास करने के लिए सिर्फ सर्वहारा वर्ग पर्याप्त नहीं है, बल्कि मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों तीनों वर्गों को साथ आना होगा।

(vi) इन्होंने अपने आंदोलन को 'नवजीवन आंदोलन' का नाम दिया। इसके अंतर्गत मजदूरों से हड़ताल करने को कहा गया, किसानों से किसान सभाएँ आयोजित करने को और बुद्धिजीवियों से वैचारिक समर्थन देने के लिए कहा गया।

2. जयप्रकाश नारायण

जयप्रकाश नारायण स्वाधीनता संग्राम के महान नेता तो थे ही, वे आज़ादी के बाद भी भारत के सबसे लोकप्रिय नेताओं की कतार में अग्रणी हैं। शुरू में वे मार्क्सवाद से प्रभावित हुए पर धीरे-धीरे महात्मा गांधी की सर्वोदय विचारधारा का प्रभाव इन पर गहरा होता गया। 1970 के दशक में इन्होंने इंदिरा गांधी के तानाशाही रवैये के विरुद्ध जन-आंदोलन का सूत्रपात किया जो स्वाधीन भारत के सबसे सफल आंदोलनों में शामिल है। इन्हीं के प्रयासों से जनता पार्टी का गठन हुआ था जिसने 1977 में देश की पहली गैर कांग्रेसी केंद्र सरकार बनाई थी। 1979 में जयप्रकाश नारायण की मृत्यु हुई। 1999 में उन्हें मरणोपरांत भारत रत्न दिया गया।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

जयप्रकाश नारायण के समाजवादी विचारों का सार इस प्रकार है-

(i) इनके अनुसार भारतीय संस्कृति में निहित मूल्य समाजवाद को धारण करते हैं। 'अपरिग्रह' (धन और सुविधाएँ एकत्रित न करना) और 'अस्तेय' (चोरी न करना) जैसे मूल्य समाजवाद के ही मूल्य हैं। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति की भौतिक उपलब्धियों को कभी भी ज़्यादा महत्व नहीं दिया गया। यह भी समाजवाद से सुसंगत है।

(ii) मनुष्य मात्र में समानता हो-यह सबसे आधारभूत नैतिक मूल्य है। भारतीय समाज में आध्यात्मिक समानता का मूल्य तो विकसित हुआ है, किंतु आर्थिक समानता का नहीं। जब तक आर्थिक समानता स्थापित न हो, तब तक आध्यात्मिक समानता का कोई महत्व नहीं है।

(iii) इन्होंने हिंसक क्रांति के सिद्धांत का विरोध किया और वर्ग सहयोग की धारणा पर बल दिया।

(iv) सोवियत संघ और चीन की राजनीतिक प्रणाली में निहित तानाशाही के तत्व को इन्होंने हमेशा खारिज किया और स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रक्रिया से ही समाजवाद तक पहुँचने की बात कही।

(v) इन्होंने राष्ट्रवाद से अधिक बल अंतर्राष्ट्रवाद पर दिया क्योंकि जब तक विश्व समुदाय का गठन न हो जाए, तब तक एशिया और अफ्रीका के अल्प-विकसित राष्ट्रों को साम्राज्यवादी शोषण से बचाना संभव नहीं है।

(vi) इनके आरंभिक विचार नेहरू के विचारों से मिलते-जुलते थे जिनमें भारी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व तथा व्यापक स्तर पर आर्थिक आयोजन जैसे तत्व महत्वपूर्ण थे। आगे चलकर इन्होंने गांधी के सर्वोदय सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जिसमें ज़्यादा बल ग्रामीण सुधार, कृषि पुनर्निर्माण, भूमि कानूनों में परिवर्तन, सहकारी खेती, सत्ता के विकेंद्रीकरण और स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था जैसे तत्वों पर दिया गया।

3. राममनोहर लोहिया

राममनोहर लोहिया भी जयप्रकाश नारायण की तरह स्वाधीनता संग्राम के सक्रिय नेता थे। इन पर भी महात्मा गांधी का प्रभाव था। साथ ही, समाजवाद का प्रभाव होने के कारण ये कांग्रेस के भीतर समाजवादी गुट में शामिल थे। स्वाधीनता के बाद ये अंग्रेज़ी विरोधी आंदोलन के प्रमुख नेता रहे। इन्होंने पूंजीवाद और मार्क्सवाद दोनों विचारधाराओं की कमियाँ बताते हुए एक ऐसे समाजवाद की संकल्पना प्रस्तुत की जो विशिष्ट तौर पर भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप था। आज भी, उत्तर प्रदेश में सक्रिय समाजवादी पार्टी घोषित तौर पर 'लोहियावाद' को अपनी विचारधारा बताती है।

लोहिया के प्रमुख समाजवादी विचार निम्नलिखित हैं-

(i) लोहिया के अनुसार पूंजीवाद और समाजवाद दोनों ही विचार भारत के लिए अपर्याप्त हैं क्योंकि ये दोनों व्यवस्थाएँ औद्योगिक अर्थव्यवस्था और केन्द्रीकरण की व्यवस्था पर टिकी हैं। भारतीय समाज के लिए ऐसा समाजवाद चाहिए जिसमें औद्योगीकरण न हो और सत्ता का विकेन्द्रीकरण ज़्यादा से ज़्यादा हो।

(ii) इनके अनुसार इतिहास की प्रक्रिया में वर्ग और जाति व्यवस्थाओं का संघर्ष होता है। वर्ग व्यवस्था खुली व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने प्रयास से ऊपर-नीचे आ जा सकता है। इसके विपरीत, जाति व्यवस्था एक बंद तथा रूढ़ व्यवस्था है जिसमें गतिशीलता की संभावना नहीं है। भारतीय समाज की मूल समस्या यह है कि यह लम्बे समय तक जाति व्यवस्था से बंधा रहने के कारण स्वतंत्रता जैसे मूल्यों से वंचित हो गया है। इसलिए सच्चे समाजवाद का बुनियादी संघर्ष जाति व्यवस्था से होना चाहिए, न कि पूंजीपतियों से।

(iii) राजनीतिक संरचना के स्तर पर अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। जिलाधीश के पद को समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि यह जिले के स्तर पर सारी प्रशासनिक शक्तियों के केन्द्रीकरण का प्रतीक है।

(iv) राज्य की संरचना चार इकाइयों के स्तर पर होनी चाहिए- गाँव, जिला, प्रांत, राष्ट्र। इस व्यवस्था को लोहिया ने 'चौखंबा राज्य' (Four Pillar State) कहा।

(v) राजनीतिक व्यवस्था संघवाद (Federalism) के नियम पर आधारित होनी चाहिए जिसे लोहिया ने 'कार्यात्मक संघवाद' (Functional Federalism) कहा। इसका अर्थ है कि शक्ति निचली इकाई से ऊपर की ओर जाएँगी और उतनी ही जाएँगी जितनी अनिवार्य हो। यही व्यवस्था विश्व सरकार तक आगे बढ़ती जाएगी।

4. जवाहरलाल नेहरू का समाजवाद

नेहरू पर कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी दोनों का गम्भीर प्रभाव था। चूँकि वे महात्मा गांधी के घोषित उत्तराधिकारी थे और 17 सालों तक पूरी मजबूती के साथ भारत के प्रधानमंत्री रहे, इसलिए उनकी समाजवादी मान्यताएँ व्यावहारिक स्तर पर भारतीय राजनीति और समाज को काफी हद तक प्रभावित कर सकीं।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

जवाहरलाल नेहरू के समाजवाद को निम्नलिखित बिंदुओं की मदद से समझा जा सकता है-

(1) नेहरू लोकतांत्रिक समाजवादी विचारक थे। वे मार्क्सवाद के कुछ विचारों से प्रभावित थे, जैसे-

(i) उनका पारम्परिक धर्मों के प्रति वही नज़रिया था जो मार्क्स का था। उन्होंने 'मेरी कहानी' में लिखा भी है कि पारम्परिक धर्मों ने मानव को नुकसान ज्यादा तथा लाभ कम पहुँचाया है।

(ii) मार्क्स ने ईश्वर और आत्मा जैसी अलौकिक सत्ताओं का खंडन अपनी भौतिकवादी विचारधारा के आधार पर किया था। नेहरू भी भौतिकवादी हैं, अतः ईश्वर या आत्मा जैसी अलौकिक सत्ताओं पर विश्वास नहीं करते हैं।

(iii) मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का भी नेहरू ने काफी समर्थन किया है। नेहरू मानते थे कि इतिहास को समझने के लिए अर्थव्यवस्था को ही केन्द्र में रखा जाना चाहिए। उन्होंने 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में भारत के इतिहास की व्याख्या में आर्थिक तत्वों को काफी अधिक महत्व दिया है।

(iv) सोवियत संघ की आर्थिक आयोजन प्रणाली का प्रभाव भी नेहरू पर था। इन्होंने पंचवर्षीय योजना की अवधारणा सोवियत संघ से ही ली।

(v) मार्क्स का मानना था कि औद्योगिक विकास से ही समृद्धि बढ़ेगी और उसी के आधार पर समाजवाद व साम्यवाद का आगमन होगा। नेहरू ने गांधी के विरोध में जाकर भी औद्योगीकरण का समर्थन किया तथा उद्योग धंधों व बांधों को 'आधुनिक भारत के मंदिर' कहा। इसी प्रकार, उत्पादन के बड़े साधनों का राष्ट्रीयकरण करना भी सोवियत संघ के समाजवाद से प्रेरित था।

(2) किंतु, नेहरू का समाजवाद पूरी तरह मार्क्सवाद से प्रभावित नहीं था। निम्नलिखित बिन्दुओं पर वे मार्क्सवाद से भिन्न विचार रखते हैं-

(i) नेहरू ने 'राष्ट्रवाद' का वैसा विरोध नहीं किया जैसा कि मार्क्स ने किया था। नेहरू 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के समर्थक तो नहीं हैं किंतु राष्ट्र को एक व्यावहारिक इकाई के रूप में स्वीकार करते हैं।

(ii) नेहरू ने 'वर्ग संघर्ष' तथा 'हिंसक क्रांति' के विचार को स्वीकार नहीं किया। इसके स्थान पर उन्होंने गांधी से प्रभावित होकर अहिंसा और वर्ग सहयोग की धारणाओं को स्वीकार किया।

(iii) मार्क्स ने 'सर्वहारा की तानाशाही' का सिद्धांत प्रतिपादित किया था जो नेहरू के समय में सोवियत संघ और चीन में प्रचलित भी था, किंतु नेहरू ने लोकतांत्रिक माध्यम से ही समाजवाद की उपलब्धि के लक्ष्य को स्वीकारा।

(iv) नेहरू ने ऐतिहासिक भौतिकवाद में निहित दृष्टिकोण का समर्थन किया किंतु स्पष्ट रूप से कहा कि भविष्य के प्रति निर्धारणवादी व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती।

(v) मार्क्स निजी सम्पत्ति तथा पूंजीवादी प्रणाली के पूर्ण विरोधी थे। नेहरू ने समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत भी निजी सम्पत्ति और निजी उद्यमशीलता को आंशिक रूप से स्वीकार किया अर्थात् मिश्रित अर्थव्यवस्था के मार्ग को चुना।

भारतीय समाजवाद की सामान्य विशेषताएँ

यदि भारत के सभी समाजवादी विचारकों की तुलना करें तो हम पाएंगे कि कुछ बिंदुओं पर आपसी विरोध के बावजूद उनमें कई बिंदुओं पर मतैक्य है। एक वर्ग के रूप में भारतीय समाजवाद के कुछ लक्षणों की पहचान की जा सकती है और पश्चिम के समाजवाद से उसके अंतरों को भी रेखांकित किया जा सकता है।

भारतीय समाजवाद की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। थोड़े बहुत अंतरों के साथ ये विशेषताएँ सभी चिंतकों में दिख जाती हैं-

(i) भारतीय समाजवाद पूरी तरह भौतिकवादी विचारधारा पर आधारित नहीं रहा है, इसमें आध्यात्मिक तत्व भी शामिल रहे हैं।

(ii) भारतीय समाजवाद में औद्योगिक प्रणाली पर अधिक बल नहीं दिया गया है। इसमें कृषि अर्थव्यवस्था पर अधिक बल है। कहीं-कहीं तो औद्योगीकरण का विरोध भी किया गया है।

(iii) इसमें हिंसक क्रांति का समर्थन नहीं किया गया है, वर्ग-सहयोग की धारणा केन्द्र में रखी गई है। जहाँ वर्ग संघर्ष की बात की गई है, वहाँ भी हिंसक संघर्ष स्वीकार नहीं किया गया है।

(iv) इसमें सिर्फ पूंजीवाद का विरोध नहीं किया गया है बल्कि साम्राज्यवाद का भी विरोध किया गया है। इसका बड़ा कारण यह है कि भारत पर पूंजीवाद से बड़ा हमला साम्राज्यवाद की ओर से हुआ था।

(v) इसमें राज्य की तानाशाही का पूर्ण विरोध किया गया है। लोकतांत्रिक माध्यमों को स्वीकार करने के प्रति इन चिंतकों में आम सहमति दिखाई पड़ती है।

(vi) राज्य की सत्ता के विकेन्द्रीकरण का समर्थन प्रायः सभी चिन्तकों द्वारा किया गया है।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

साम्यवाद या मार्क्सवाद
(Communism or Marxism)

'साम्यवाद' या 'मार्क्सवाद' एक ही विचारधारा के दो नाम हैं जिसे 'वैज्ञानिक समाजवाद' (Scientific Socialism) और 'क्रांतिकारी समाजवाद' (Revolutionary Socialism) भी कहा जाता है। इसके इन सभी नामों के पीछे कोई न कोई आधार है। इसे 'मार्क्सवाद' इसके प्रतिपादक कार्ल मार्क्स के नाम के कारण कहा जाता है जबकि 'साम्यवाद' (Communism) इसलिए कि इस विचारधारा का अंतिम उद्देश्य जिस आदर्श अवस्था में पहुँचना है, उसका नाम साम्यवाद है। 'वैज्ञानिक समाजवाद' और 'क्रांतिकारी समाजवाद' नामों का प्रयोग इसलिए किया जाता है ताकि इसे समाजवाद के दो अन्य रूपों 'स्वप्नदर्शी समाजवाद' (Utopian Socialism) तथा 'विकासवादी समाजवाद' (Evolutionary Socialism) से अलग किया जा सके।

मार्क्सवाद या साम्यवाद का प्रतिपादन कार्ल मार्क्स और फ्रैडरिक एंजेल्स नामक दो यूरोपीय चिंतकों ने 19वीं सदी में किया था। आगे चलकर 1917 ई. में 'लेनिन' (Lenin) ने सोवियत रूस में तथा 1949 ई. में 'माओ त्से तुंग' ने चीन में इसी विचारधारा को आधार बनाकर क्रांतियाँ कीं तथा नये प्रकार की राजनीतिक प्रणाली का विकास किया। इस दृष्टि से लेनिन तथा माओ को भी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रमुख स्तम्भ माना जाता है। 20वीं शताब्दी के आरंभ में मार्क्सवाद के भीतर एक नया संप्रदाय विकसित हुआ जिसे 'नवमार्क्सवाद' (Neo-Marxism) कहा जाता है। इस समूह के विचारक पारंपरिक मार्क्सवाद (Classical Marxism) के 'क्रांति' और 'वर्ग संघर्ष' जैसे सिद्धांतों को अस्वीकार करते हैं तथा नए तरीके से मार्क्सवाद की व्याख्या करते हैं।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, स्वाधीनता संग्राम के दौरान मानवेन्द्र नाथ रॉय मार्क्सवाद के प्रखर समर्थकों में शामिल थे। वे लेनिन के सलाहकार मण्डल के सदस्य भी रहे, किंतु 1940 में उनका मार्क्सवाद से मोहभंग हो गया था तथा उनके विचार कुछ बदल गये थे। इसी प्रकार कुछ समय तक पं. जवाहरलाल नेहरू पर भी मार्क्सवाद का असर देखा गया, किंतु बाद में स्वयं उन्होंने स्पष्ट किया कि वे मार्क्सवाद के कम, समाजवाद के ज्यादा नजदीक हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारी आंदोलन (Revolutionary movement) के दूसरे चरण, जिसमें भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी शामिल थे, पर भी मार्क्सवाद का व्यापक असर था। वर्तमान समय में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (CPI), मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM), फॉरवर्ड ब्लॉक आदि राजनीतिक दलों तथा कई नक्सलवादी व माओवादी संगठनों पर इस विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव नजर आता है।

मार्क्सवादी दर्शन/विचारधारा *(Marxist Philosophy/Ideology)*

मार्क्सवाद एक जटिल विचारधारा है जिसमें बहुत से विचार निहित हैं। उन सभी विचारों की समग्रता को ही मार्क्सवाद कहा जाता है। मार्क्सवाद के प्रमुख विचारों का परिचय इस प्रकार है–

(1) मार्क्सवाद के दो प्रमुख सिद्धांत हैं- 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' (Dialectic Materialism) तथा 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' (Historical Materialism)। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectic Materialism) का संबंध प्रकृति और जगत के नियमों की व्याख्या से है जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) मनुष्य के सम्पूर्ण इतिहास की व्याख्या है।

(2) मार्क्सवाद का मानना है कि प्रकृति की हर वस्तु तथा दुनिया के प्रत्येक समाज में कुछ अन्तर्विरोध (Contradictions) होते हैं जिनके कारण उनके भीतर 'वाद' (Thesis) और 'प्रतिवाद' (Anti-thesis) में द्वंद्व (struggle) की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इन दोनों के संघर्ष के माध्यम से एक तीसरी अवस्था 'संवाद' (Synthesis) का उद्‌भव होता है। 'संवाद' वस्तुत: 'वाद' और 'प्रतिवाद' की ही कुछ विशेषताओं को जोड़कर तथा कुछ को छोड़कर एक समझौते की तरह विकसित होता है। आगे चलकर, 'संवाद' खुद ही 'वाद' बन जाता है तथा उसके विरुद्ध पुन: 'प्रतिवाद' का विकास होता है। 'वाद', 'प्रतिवाद' तथा 'संवाद' की इस त्रिस्तरीय प्रक्रिया के माध्यम से ही सारा विकास (Evolution) होता है। अत: विकास के लिए 'द्वंद्व' या 'संघर्ष' ज़रूरी है।

(3) मानव समाज का सबसे महत्वपूर्ण नियम है कि इसमें एक 'बुनियादी ढाँचा' (Deep Structure) होता है तथा शेष 'ऊपरी ढाँचे' (Super Structures) होते हैं। बुनियादी ढाँचा 'उत्पादन प्रणाली' (Mode of Production) को कहते हैं जिसके दो पक्ष हैं- 'उत्पादन की शक्तियाँ' (Forces of Production) तथा 'उत्पादन के संबंध' (Relations of Production)। उत्पादन प्रणाली से ही समाज का संपूर्ण ढाँचा निर्धारित होता है। उत्पादन की शक्तियों या उत्पादन के संबंधों में परिवर्तन आने से उत्पादन प्रणाली बदल जाती है। समाज के शेष सभी ढाँचे जैसे सामाजिक मान्यताएँ, राजनीति, कला, संस्कृति इत्यादि इसी से निर्धारित होते हैं तथा उत्पादन प्रणाली के बदलने पर वे भी बदल जाते हैं। इस संबंध में मार्क्स का प्रसिद्ध कथन है कि *"हाथ की चक्की सामंतवाद पैदा करती है जबकि भाप का इंजन पूंजीवाद पैदा करता है।"*

Copyright – Drishti The Vision Foundation

(4) इतिहास की व्याख्या में मार्क्स ने सबसे ज्यादा महत्व 'उत्पादन के संबंधों' को दिया है। उसका मानना है कि इतिहास के किसी चरण में कुछ व्यक्ति बलपूर्वक उत्पादक शक्तियों के मालिक बन जाते हैं जबकि बाकी लोग सिर्फ श्रम-शक्ति अर्थात् मेहनत के प्रयोग से जीवित रहने को बाध्य होते हैं। यह शोषण प्राचीन काल से ही शुरु हुआ और समाज दो वर्गों शोषक (Haves) तथा शोषित (Have Nots) में विभाजित हो गया। इतिहास की व्याख्या का अर्थ यही है कि इन वर्गों के द्वंद्व के माध्यम से युगों के परिवर्तन को समझा जाए। मार्क्स का कथन है- *"आज तक के सभी समाजों का इतिहास सिर्फ वर्ग संघर्ष का इतिहास है।"*

(5) मार्क्स के अनुसार, शोषित वर्ग की समस्याओं का एक ही समाधान है कि वह संगठित होकर हिंसक क्रांति (Violent Revolution) करे। वर्ग चेतना (Class consciousness) अर्थात् अपने वर्ग की वास्तविक स्थितियों तथा हितों की समझ पैदा होने पर शोषित वर्ग अपने अधिकारों के लिए जागरूक होता है और क्रांति की संभावना बनती है। दास व्यवस्था या सामंतवाद के दौर में छोटी-छोटी क्रांतियाँ होती हैं किंतु पूंजीवाद के विरुद्ध एक वैश्विक क्रांति की संभावना बनती है क्योंकि पूंजीवाद में हजारों की संख्या में मज़दूर साथ-साथ रहते और काम करते हैं तथा उनके मध्य आपसी संवाद कायम करने में विशेष समस्या नहीं होती। गौरतलब है कि मार्क्स को गांधी जी तथा स्वप्नदर्शी समाजवादियों (Utopian Socialists) द्वारा समर्थित 'हृदय-परिवर्तन' के विचार में कोई आस्था नहीं है क्योंकि उसके अनुसार यह एक कल्पना है, यथार्थ नहीं।

(6) मार्क्सवाद का मानना है कि सभी सामाजिक समस्याओं की जड़ 'निजी संपत्ति' (Private Property) की धारणा में छिपी है। निजी संपत्ति ही समाज में विषमताएँ पैदा करती है। इसके कारण एक वर्ग में पीढ़ी-दर-पीढ़ी अमीरी का संचरण होता रहता है जबकि दूसरे वर्ग में सभी पीढियाँ गरीबी व शोषण झेलते रहने को मजबूर होती हैं। जब तक निजी संपत्ति की धारणा का पूर्ण विनाश नहीं होगा, तब तक समाज में समानता की स्थापना नहीं हो सकेगी। मार्क्स का दावा है कि क्रांति के बाद समाजवाद तथा साम्यवाद में निजी संपत्ति का अस्तित्व नहीं रहेगा।

(7) मार्क्सवाद में निजी संपत्ति की व्याख्या 'अधिशेष/अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत' (Theory of Surplus Value) द्वारा की जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार पूंजीपति की आय, जिसे वह लाभ कहता है, वस्तुत: 'अधिशेष मूल्य' या 'चोरी की आय' है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन का अर्थ वस्तु के मूल्य में होने वाली वह वृद्धि है जो किसी श्रमिक द्वारा अपनी श्रम-शक्ति के प्रयोग के कारण होती है। वह एडम स्मिथ जैसे उदारवादी दार्शनिकों के इस विचार को नहीं मानता कि पूंजी, भूमि और उद्यमशीलता भी उत्पादन के अनिवार्य साधन होते हैं। उसके अनुसार भूमि व पूंजी सारे समाज की होती है और उत्पादन प्रक्रिया में निहित सम्पूर्ण खतरा भी सारा समाज मिलकर उठा सकता है। मूल्य की वास्तविक वृद्धि सिर्फ श्रम से होती है, अत: सम्पूर्ण उत्पादित मूल्य श्रमिक को ही मिलना चाहिए।

किंतु, पूंजीपति श्रमिक द्वारा उत्पादित मूल्य का एक बड़ा अंश लाभ के नाम पर अपने पास रख लेता है। यदि एक मजदूर 12 घंटे काम करके 120 रु० मूल्य का उत्पादन करे और उसे उस श्रम के बदले सिर्फ 20 रु० दिये जाएँ तो शेष 100 रु० अधिशेष मूल्य है। इस अर्थ में देखें तो मजदूर द्वारा किये गये 12 घंटों के श्रम में से उसे सिर्फ दो घंटों के कार्य का भुगतान मिलता है जबकि शेष उत्पादन पर पूंजीपति बिना श्रम किये कब्जा कर लेता है। अधिशेष मूल्य को मार्क्स ने 'चुराई गई आय' भी कहा है। उसने अधिशेष मूल्य पर कब्जा करने वाले शोषक वर्गों को 'परजीवी' (Parasite) बताया है।

(8) मार्क्सवाद 'राज्य' (State) का विरोध करता है अत: वह 'अराजकतावाद' (Anarchism) का समर्थक है। मार्क्स का दावा है कि राज्य चाहे जैसा भी हो, वस्तुत: वह उच्च वर्ग के धन से संचालित होता है तथा उसी के हितों का पोषण करता है। उदाहरण के लिए, लोकतंत्र में राज्य पूंजीपतियों को संपत्ति का अधिकार देकर उनकी संपत्ति की सुरक्षा की गारंटी देता है जो कि वस्तुत: निम्न वर्ग को गरीब बनाए रखने की साजिश है। पुलिस, सेना, अधिकारीतंत्र आदि का प्रयोग इस भेदभावपूर्ण व्यवस्था को बनाए रखने के लिए ही किया जाता है। मार्क्सवाद के अनुसार, समानता की अवस्था लाने के लिए राज्य का पूर्ण अंत होना ज़रूरी है। उसका दावा है कि साम्यवाद (Communism) में *'राज्य लुप्त हो जाएगा'* (The state shall wither away)।

(9) मार्क्स ने 'धर्म' का विरोध किया है। उसकी राय में धर्म अफीम (Opium) के समान है क्योंकि वह शोषित व्यक्ति को वास्तविक वर्ग-शत्रु (Class-enemy) से संघर्ष करने के स्थान पर अलौकिक सुखों के लिए प्रेरणा देकर भटका देता है। साथ ही, वह शोषित व पीड़ित व्यक्ति को विद्रोह या क्रांति की प्रेरणा देने की बजाय शांत रहने, सहनशील बनने तथा भाग्यवादी होने की सीख देता है। इसका परिणाम यह होता है कि शोषित व्यक्ति अपने शोषण, दुख तथा पीड़ा को अपनी नियति या भाग्य मानकर झेलने लगता है, उनके खिलाफ संघर्ष नहीं करता। मार्क्स की स्पष्ट घोषणा है कि समाजवाद तथा साम्यवाद में धर्म नहीं रहेगा। समाजवाद में धर्म मानना निषिद्ध होगा जबकि साम्यवाद में धर्म मनुष्य की चेतना से लुप्त हो चुका होगा।

(10) मार्क्सवाद 'राष्ट्रवाद' (Nationalism) का भी विरोध करता है क्योंकि मार्क्स के अनुसार राष्ट्रवाद एक मिथ्या चेतना (False Consciousness) है जो कृत्रिम भौगोलिक, धार्मिक, भाषायी या सांस्कृतिक भावनाओं को उभार कर वास्तविक आर्थिक शोषण से मजदूर वर्ग का ध्यान भटकाती है। मार्क्स राष्ट्रवाद को पूंजीवाद का ही सांस्कृतिक पक्ष मानता है जिसे पूंजीवाद ने इसीलिए उभारा है ताकि मजदूरों को नकली प्रश्नों में उलझाया जा सके। मार्क्स अंतर्राष्ट्रवाद में विश्वास रखता है क्योंकि

Copyright – Drishti The Vision Foundation

दुनिया भर के मजदूरों की हालत प्राय: एक-सी है, राष्ट्र के आधार पर उसमें कोई अंतर नहीं आता। उसने कहा है कि *'मजदूरों का कोई देश नहीं होता।'* उसने नारा भी यही दिया कि *'दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ'*। उसका दृढ़ विश्वास था कि पूंजीवाद का चरम विकास होने पर वैश्विक क्रांति होगी जिससे समाजवाद का उद्‌भव होगा।

गौरतलब है कि मार्क्स के बाद इस विचार को लेकर मार्क्सवादियों में काफी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। लेनिन, स्टालिन तथा माओ ने अपने-अपने तरीके से मार्क्सवादी विचारधारा के भीतर राष्ट्रवाद को स्वीकार किया है।

(11) मार्क्सवाद के समर्थकों का एक वर्ग विवाह (Marriage) और परिवार (Family) संस्थाओं का भी विरोधी है क्योंकि ये संस्थाएँ निजी संपत्ति (Private Property) की सुरक्षा और हस्तांतरण के लिए विकसित हुई हैं, न कि प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए। ऐसे मार्क्सवादियों का स्पष्ट मानना है कि नारी विवाह और परिवार के अंतर्गत शोषित वर्ग है, जबकि पुरुष शोषक वर्ग।

(12) ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या के अंतर्गत मार्क्स ने इतिहास की कुछ अवस्थाओं का ज़िक्र किया है। उसका दावा है कि दुनिया का हर समाज इन्हीं अवस्थाओं से होकर गुज़रता है। ये अवस्थाएँ इस प्रकार हैं-

(i) **आदिम साम्यवाद (Primitive Communism)**– यह सामाजिक जीवन की शुरुआत का समय है जब न तो निजी संपत्ति की धारणा थी और न ही शोषण। सभी मनुष्य सामुदायिक जीवन जीते थे और उनमें बेहद प्राथमिक किस्म का श्रम विभाजन था। इस समय जीवन अत्यंत कष्टपूर्ण था क्योंकि मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों तथा पशुओं से हर समय खतरा रहता था और मूलभूत ज़रूरतें पूरी करने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता था।

(ii) **दास व्यवस्था (Slavery)**– यह मानवीय सभ्यता का सबसे बुरा दौर था क्योंकि इसमें शोषक वर्ग ने निम्नवर्ग के मनुष्यों को संपत्ति ही बना लिया था। दास और मालिक इस समय के दो वर्ग थे। दास मालिकों की निजी संपत्ति थे जिनके साथ कुछ भी करना वैध था। यहाँ तक कि दासों को अपनी संतान का अधिकार भी नहीं था। रोम तथा ट्यूटन आदि में यह अवस्था स्पष्ट तौर पर विकसित हुई।

(iii) **सामंतवाद (Feudalism)**– कृषि अर्थव्यवस्था की शुरुआत के साथ ही सामंतवाद का उदय हुआ और इसमें दो वर्ग बने- सामंत (Feudal Lords) तथा कृषक (Serfs)। कृषकों को दासों की तुलना में ज्यादा अधिकार प्राप्त थे किंतु उन्हें बेगार करनी पड़ती थी और युद्ध होने पर सैनिक सेवा भी देनी होती थी। यह व्यवस्था यूरोप के लगभग सभी देशों में विकसित हुई।

(iv) **पूंजीवाद (Capitalism)**– औद्योगिक क्रांति के साथ ही पूंजीवाद का उदय हुआ जिसमें पूंजीपति (बुर्जुआ) तथा मजदूर (सर्वहारा) दो वर्ग बने। इसमें मज़दूरों को अनुबंध (Contract) की स्वतंत्रता दी गई। सैद्धांतिक तौर पर इस व्यवस्था में उन्हें बेगार नहीं करनी पड़ती है किंतु राज्य की अहस्तक्षेप नीति (Laissez-faire) तथा माँग-पूर्ति के कठोर नियम के कारण मज़दूरों की स्थिति बेहद दयनीय बनी रहती है। मार्क्स का विश्वास है कि पूंजीवाद में मजदूरों में एकता और वर्ग चेतना तेज़ी से फैलती है और इसी के चरम स्तर पर दुनिया के सभी मज़दूर विश्वव्यापी हिंसक क्रांति करके समाजवाद की स्थापना करेंगे।

(v) **समाजवाद (Socialism)**– समाजवाद पूंजीवाद के तुरंत बाद की स्थिति है जिसे 'सर्वहारा की तानाशाही' (Dictatorship of the Proletariat) भी कहा गया है। इस अवस्था में राज्य तो रहता है किंतु वह जनसाधारण के पक्ष में होता है। निजी संपत्ति की धारणा खत्म हो जाती है। धर्म को मानना निषिद्ध हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति क्षमता के अनुसार कार्य करता है और उसे कार्य के अनुसार उपलब्धियाँ मिलती हैं।

Concrete Democracy

(vi) **साम्यवाद (Communism)**– साम्यवाद अंतिम अवस्था है जिसे मार्क्स का 'यूटोपिया' या 'स्वप्नलोक' भी कहते हैं। यह समाजवाद का अगला स्वाभाविक चरण है जहाँ राज्य लुप्त हो जाता है, धर्म मानवीय चेतना से हट जाता है। इस अवस्था में न 'शोषण' रहता है, न 'राष्ट्र', न 'विवाह' या 'परिवार' और न ही किसी प्रकार का 'अलगाव' या 'अजनबीपन' (Self alienation)। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता और रुचि के अनुसार कार्य करता है तथा उसे ज़रूरत के अनुसार उपलब्धियाँ मिलती हैं।

(13) मार्क्स के दर्शन में 'अलगाव' या 'अजनबीपन' (Alienation) का सिद्धांत भी अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के माध्यम से मार्क्स ने मानव की रचनात्मक प्रवृत्ति तथा पूंजीवाद के कारण उस पर उत्पन्न हुए संकटों की व्याख्या की है। इस सिद्धांत को मार्क्स ने अपने आरंभिक लेखों में 1844 में प्रस्तुत किया था। आजकल 'नवमार्क्सवाद' (Neo-Marxism) के समर्थक इस धारणा पर विशेष ज़ोर देते हैं।

मार्क्स की मान्यता है कि मनुष्य मूलत: रचनात्मक या सृजनात्मक प्राणी है और उसकी रचनात्मकता कार्य के माध्यम से व्यक्त होती है। जब व्यक्ति कार्य करता है तो उसे न केवल रचनात्मक कार्य करने का संतोष प्राप्त होता है बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व को निभाने का आनन्द भी मिलता है। किंतु, जब मनुष्य को रचनात्मक संतोष मिलना बंद हो जाता है तो वह अलगाव का शिकार होता है। पूंजीवाद में मजदूर चार प्रकार के अलगाव का शिकार होता है–

Copyright – Drishti The Vision Foundation

(i) अपने कार्य से अलगाव क्योंकि विशेषीकरण के कारण उसे हमेशा एक जैसा उबाऊ काम करना पड़ता है और उसमें उसकी सृजनात्मकता व्यक्त नहीं हो पाती।

(ii) उत्पाद से अलगाव क्योंकि उत्पाद के भविष्य पर मज़दूर का कोई नियंत्रण नहीं होता।

(iii) समाज से अलगाव क्योंकि उसके सामाजिक संबंध मानवीय आधारों पर नहीं बल्कि मांग-पूर्ति जैसे कठोर तथा मशीनी नियमों से तय होते हैं।

(iv) अपनी मानव प्रकृति से अलगाव क्योंकि यंत्र की तरह काम करते-करते मजदूर खुद भी यंत्र बनकर अपनी सृजनात्मकता को भूल जाता है।

मार्क्स के अनुसार अलगाव की समाप्ति साम्यवाद में होती है। साम्यवाद मे वर्ग विभेद न होने के कारण कोई शोषण नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति को सृजनात्मक स्वतंत्रता उपलब्ध होती है और वह अपनी रुचियों और क्षमताओं के अनुसार कार्य करता है, न कि बाज़ार के दबावों के अनुसार।

मार्क्स के बाद मार्क्सवाद के रूप *(Forms of Marxism after Marx)*

मार्क्स की मृत्यु 1883 ई. में हुई। उससे पहले 1870 के दशक में एडवर्ड बर्नस्टीन जैसे विचारक मार्क्स के हिंसक क्रांति के सिद्धांत को खारिज करके 'विकासवादी समाजवाद' (Evolutionary Socialism) की धारणा प्रस्तुत कर चुके थे। खुद मार्क्स ने भी अपनी मृत्यु से कुछ पहले अमेरिका और इंग्लैंड जैसे देशों के बारे में स्वीकार किया था कि हिंसक क्रांति के बिना भी समाजवाद की ओर बढ़ना संभव हो सकता है।

मार्क्स के बाद मार्क्सवाद दो भागों में बँट गया। पहले वर्ग में वे विचारक शामिल हैं जो 'क्रांति' और 'वर्ग-संघर्ष' के सिद्धांतों में आस्था रखते हैं और 'धर्म', 'राष्ट्र' तथा 'राज्य' जैसी संस्थाओं का निषेध करते हैं। इन विचारकों के वर्ग को 'पारंपरिक मार्क्सवाद' (Classical Marxism) कहा जाता है। लेनिन तथा माओ जैसे क्रांतिकारियों का संबंध इसी समूह से है। दूसरे वर्ग में वे विचारक आते हैं जिन्होंने हिंसक क्रांति और वर्ग संघर्ष के सिद्धांतों को बदली हुई स्थितियों में अनावश्यक मानकर मार्क्सवाद की व्याख्या नए तरीके से की। इन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि पूंजीवाद के नए रूप किस तरह समाज के विभिन्न वर्गों को छलते हैं। विचारकों के इस वर्ग को 'नवमार्क्सवाद' (Neo-Marxism) कहा जाता है। यह वर्ग 20वीं शताब्दी की शुरुआत में विकसित हुआ। इसमें एंटोनियो ग्राम्शी, एरिक फ्रॉम और हर्बर्ट मारक्यूज़ जैसे विचारक प्रमुख तौर पर शामिल हैं।

इनमें से कुछ प्रमुख विचारकों के विचार नीचे दिए जा रहे हैं।

लेनिन का मार्क्सवाद *(Lenin's Marxism)*

मार्क्स के सैद्धांतिक मार्क्सवाद को व्यावहारिक रूप तब मिला जब लेनिन ने 1917 में तत्कालीन सोवियत संघ में 'बोल्शेविक क्रांति' की और क्रांति के पश्चात् साम्यवादी दल की तानाशाही स्थापित की। इससे पहले यूरोप में कई समाजवादी विचारक दावा कर चुके थे कि मार्क्स के 'क्रांति' तथा 'वर्ग-संघर्ष' जैसे विचार अव्यावहारिक हैं, पर लेनिन ने ऐसी सभी आलोचनाओं को खारिज करते हुए साबित कर दिया कि समाजवादी क्रांति का विचार निरर्थक नहीं है। चूँकि व्यावहारिक स्तर पर यह पहला मार्क्सवादी प्रयोग था, और इस प्रयोग में मार्क्स के बताए रास्ते को थोड़ा बदला गया था; इसलिए स्वाभाविक तौर पर लेनिन को आवश्यकता महसूस हुई कि वह मार्क्सवाद के सिद्धांतों को बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप पुन: व्याख्यायित करे। उसने पारंपरिक मार्क्सवाद में निम्नलिखित संशोधन किये–

(i) यह आवश्यक नहीं है कि क्रांति पूंजीवाद के चरम विकास के बाद ही हो। क्रांति किसी भी देश में हो सकती है। शर्त मात्र इतनी है कि वहाँ शोषण का तंत्र कमज़ोर होना चाहिए। जिन देशों में पूंजीवाद विकसित नहीं हुआ है, वहाँ भी शोषण तंत्र कमज़ोर होने पर क्रांति हो सकती है। रूस में पूंजीवाद का अधिक विकास नहीं होने के बावजूद इसीलिए क्रांति हो सकी क्योंकि रूस में शोषण का तंत्र तोड़ा जा सकने लायक था।

(ii) क्रांति पूरे विश्व में एक साथ हो, यह भी आवश्यक नहीं है। समाजवाद का आगमन सभी देशों में उनकी स्थितियों के अनुसार हो सकता है। लेनिन ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक समाजवादी देश को अन्य देशों में क्रांति के लायक परिस्थितियाँ निर्मित करने के लिए सहायता देनी चाहिए।

(iii) कम विकसित देशों में साम्राज्यवाद (Imperialism) ही पूंजीवाद का रूप है क्योंकि पूंजीपति ही साम्राज्यवाद को साधन बनाकर गरीब देशों के संसाधन लूटते हैं। अत: साम्राज्यवाद के शिकार देशों में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को क्रांति ही माना जाएगा।

(iv) राज्य को एक झटके में समाप्त करना संभव नहीं है। उसकी आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक पूरे विश्व में साम्यवाद स्थापित न हो जाए।

(v) क्रांति केवल मजदूरों के माध्यम से संभव नहीं होगी। उसमें कृषकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होगी। यह विचार इसलिए

641, प्रथम तल, मुखर्जी नगर, दिल्ली-9.
दूरभाष : 011-27604128, 47532596, (+91)8130392358-59-60
ई-मेल: drishtiacademy@gmail.com, वेबसाइट: www.drishtithevisionfoundation.com
फेसबुक: https://www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
Copyright – Drishti The Vision Foundation

दिया गया था क्योंकि तत्कालीन रूस में पूंजीवाद विकसित नहीं हुआ था और मजदूर वर्ग की संख्या काफी कम थी। वहाँ ज्यादा संख्या किसानों की थी और उन्हें साथ लिए बिना क्रांति को सफल बनाना असंभव था।

(vi) मार्क्स ने माना था कि मजदूरों में वर्ग-चेतना अपने आप पैदा होगी। लेनिन ने माना कि सामान्य मजदूरों में इतनी समझ नहीं होती कि वे अपने आप शोषण की प्रक्रिया को समझ सकें तथा अपने वर्ग हितों को पहचानकर उनके पक्ष में संगठित हो जाएँ। इसलिए उसने वर्ग चेतना से युक्त मजदूरों (तथा कुछ बुद्धिजीवियों) को साथ लेकर 'साम्यवादी दल' की स्थापना की जिसे न केवल क्रांतिकारी वर्ग चेतना का प्रचार-प्रसार करना था बल्कि क्रांति के पश्चात् तानाशाही का संचालन भी करना था।

(vii) साम्यवादी दल के संगठन के संबंध में लेनिन ने 'लोकतांत्रिक केंद्रवाद' (Democratic Centralism) का सिद्धांत दिया। इसका अर्थ है कि दल का नेतृत्व कौन करेगा, इसका फैसला दल के भीतर चुनाव द्वारा किया जाएगा; किंतु दल के सदस्य जिन व्यक्तियों को नेतृत्व के लिए चुन लेंगे, उसके बाद वे उनके (नेतृत्व के लिए चुने गए व्यक्तियों के) आदेशों को मानने को बाध्य होंगे। यही सिद्धांत सबसे नीचे के स्तर से शुरू होकर सर्वोच्च स्तर तक लागू होगा।

कुछ लोगों का मत है कि लेनिन ने मार्क्स को जितना स्वीकारा है, उससे कहीं अधिक मार्क्सवाद को खारिज कर दिया है। किंतु, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मार्क्स ने अपने दर्शन को परिस्थितियों से परे कभी नहीं माना। सच यह है कि अगर वह खुद वास्तविक क्रांति के समय जीवित होता तो शायद अपने सिद्धांतों में वही परिवर्तन करता जो लेनिन ने किये। इस रूप में लेनिन मार्क्सवाद का खंडन नहीं बल्कि तार्किक विस्तार करता है।

स्टालिन का मार्क्सवाद *(Stalin's Marxism)*

1924 में लेनिन की मृत्यु होने के बाद उसके उत्तराधिकारी के तौर पर लियों ट्रॉट्स्की तथा जोसेफ वी. स्टालिन में कड़ी प्रतिस्पर्धा देखी गई थी। ट्राट्स्की की धारणा थी कि विश्व क्रांति के लिए संघर्ष जारी रहना चाहिए तथा सोवियत संघ को उसके लिए पूरी प्रतिबद्धता से कार्य करना चाहिए क्योंकि अगर सारे विश्व में पूंजीवाद खत्म नहीं होगा तो सोवियत संघ का समाजवाद भी विफल हो जाएगा। स्टालिन की राय इसके विपरीत थी। शक्ति संघर्ष में स्टालिन की विजय हुई और उसने 1953 तक लगातार 29 वर्षों तक सोवियत संघ पर शासन किया। यद्यपि स्टालिन ने सभी कार्य लेनिन के नाम पर किए, पर वास्तविकता यह है कि उसने कई मामलों में मार्क्स तथा लेनिन के विचारों में संशोधन किया।

स्टालिन के प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं-

(i) स्टालिन ने 'एक देश में समाजवाद' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। उसने ट्रॉट्स्की के विपरीत यह मत रखा कि सोवियत संघ को विश्व क्रांति का कार्यक्रम कुछ समय के लिए स्थगित कर देना चाहिए और अपनी सारी शक्ति अपने समाजवाद को सुदृढ़ करने में लगानी चाहिए। उसने स्पष्ट किया कि बाकी दुनिया में पूंजीवाद के होते हुए भी एक देश में समाजवाद का अस्तित्व संभव है।

(ii) स्टालिन ने कुछ मामलों में राष्ट्रवाद को भी प्रोत्साहन दिया, विशेषतः जापान को द्वितीय विश्व युद्ध में हराने के मामले में। यह विचार मार्क्स और लेनिन की विचारधारा से काफी अलग था।

(iii) स्टालिन ने राज्य के लुप्त हो जाने के मार्क्सवादी विचार को भी पीछे धकेल दिया। उसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि सोवियत संघ में राज्य लुप्त नहीं हो सकता क्योंकि वह चारों ओर से पूंजीवादी शक्तियों से घिरा है। जब तक पूंजीवादी राज्यों का यह घेरा खत्म न कर दिया जाए, तब तक राज्य की शक्ति का विस्तार करना ज़रूरी है।

(iv) स्टालिन ने आय की समानता के सिद्धांत को भी कुछ प्रसंगों में खारिज कर दिया। लेनिन का मानना था कि किसी भी अधिकारी को एक कुशल मजदूर से ज्यादा वेतन नहीं लेना चाहिए। इसके विपरीत, स्टालिन ने घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके काम के अनुसार वेतन मिलना चाहिए जिसमें उसकी योग्यता तथा क्षमता की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

(v) स्टालिन ने लेनिन के इस सिद्धांत को भी अनिवार्य नहीं माना कि पूंजीवाद से समाजवाद की यात्रा सिर्फ हिंसक क्रांति के माध्यम से हो सकती है। उसने कहीं-कहीं स्वीकार किया है कि यह प्रक्रिया शांतिपूर्ण ढंग से भी पूरी हो सकती है। गौरतलब है कि मार्क्स ने भी अपने अंतिम समय में इस बात को स्वीकार किया था।

माओ का मार्क्सवाद *(Mao's Marxism)*

माओ-त्से-तुंग चीन के मार्क्सवादी नेता थे जिन्होंने 1949 ई. में जनवादी क्रांति (People's Revolution) की। इन्होंने पारंपरिक मार्क्सवाद के कई सिद्धांतों में संशोधन किया और लेनिन व स्टालिन के कई विचारों को भी बदला।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

माओ के प्रमुख मार्क्सवादी विचार इस प्रकार हैं-

(i) माओ के अनुसार क्रांति का अनिवार्य संबंध पूंजीवाद के चरम स्तर से नहीं है। उसने कृषक क्रांति पर अधिक बल दिया क्योंकि तत्कालीन चीनी अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर टिकी हुई थी। उसने सैनिकों को भी क्रांति की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्त्व दिया क्योंकि उसे सेना से काफी समर्थन हासिल था। उसका यह कथन कि "*सत्ता बंदूक की नली से निकलती है*" भी सेना के महत्त्व को ही रेखांकित करता है।

(ii) माओ ने 'सांस्कृतिक क्रांति' (Cultural Revolution) का नारा दिया। उसने कहा कि उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक स्वामित्व मे आ जाना ही पर्याप्त नहीं है, विचारों व मूल्यों के स्तर पर जनवाद को स्थापित करना ज़रूरी है। वास्तविक समाजवाद या जनवाद तब आएगा जब समाज के सभी लोगों की सोच जनवादी हो जाएगी।

(iii) माओ ने 'निरंतर क्रांति' (Continuous Revolution) का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उसने कहा कि क्रांति एक घटना नहीं बल्कि लंबे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है। क्रांति का अर्थ समाज में उन मूल्यों को स्थापित कर देना है जो जनवादी मानसिकता को संभव बनाते हैं। इस कार्य में लम्बा समय लगेगा।

(iv) राज्य एक झटके में समाप्त नहीं होगा। उसकी जरूरत तब तक बनी रहेगी जब तक सांस्कृतिक क्रांति की प्रक्रिया पूरी न हो क्योंकि राज्य के अभाव में 'प्रति-क्रांति' (Counter Revolution) के कारण यह प्रक्रिया विफल हो सकती है। सर्वहारा क्रांति के बाद राज्य की भूमिका 'सर्वहारा की अग्रपंक्ति' (Vanguard of the proletariat) के रूप में होती है। हो सकता है कि राज्य का विलोपन कई शताब्दियों तक भी न हो सके।

(v) माओ ने मार्क्सवाद और राष्ट्रवाद में समन्वय किया। उसने लेनिन से आगे बढ़ते हुए दावा किया कि राष्ट्रवादी हितों को मार्क्सवाद के नाम पर छोड़ा नहीं जा सकता। उसने तिब्बत तथा अन्य दिशाओं में राष्ट्रीय सीमाओं को बढ़ाने की चेष्टा भी की।

(vi) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मामले में माओ 'शांतिपूर्ण सहअस्तित्व' (Peaceful Co-existence) का समर्थक नहीं है। उसका मानना है कि साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद का पूर्ण विनाश किए बिना आदर्श समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती। इस उद्देश्य के लिए वह युद्ध को आवश्यक मानता है। उसे विश्वास था कि तीसरा विश्व युद्ध साम्राज्यवाद को पूरी तरह नष्ट कर देगा। गौरतलब है कि ख्रुश्चेव के शासन काल में सोवियत संघ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की वकालत कर रहा था जिसे माओ ने 'संशोधनवाद' (Revisionism) कहकर खारिज कर दिया। उसने भारत जैसे उन देशों की भी आलोचना की जो पूंजीवादी और समाजवादी गुटों से अलग होकर तटस्थता की नीति पर चल रहे थे।

(vii) माओ ने भी लेनिन की तरह 'लोकतांत्रिक केंद्रवाद' (Democratic Centralism) का सिद्धांत स्वीकार किया। चीन में इस सिद्धांत का प्रयोग साम्यवादी दल तथा प्रशासन दोनों स्तरों पर किया गया।

नवमार्क्सवाद *(Neo-Marxism)*

नवमार्क्सवाद मार्क्सवादी दर्शन का एक नवीन रूप है जो मुख्यतः बीसवीं शताब्दी में विकसित हुआ है। यह विचारधारा पारंपरिक मार्क्सवाद के 'वर्ग-संघर्ष' और 'क्रांति' के सिद्धांतों को प्रासंगिक नहीं मानती तथा बदली हुई परिस्थितियों में मनुष्य के जीवन पर पूंजीवाद के प्रभावों का सूक्ष्म विश्लेषण करती है। इस विचारधारा के समर्थकों में प्रमुख हैं-एन्टोनियो ग्राम्शी, लुई आल्थूज़र, एरिक फ्रॉम, हर्बर्ट मारक्यूज़, जुर्गेन हैबरमास, जॉर्ज ल्यूकाच, थियोडोर एडोर्नो, मैक्स हार्खाइमर और जीन पॉल सार्त्र।

ग्राम्शी और लुई आल्थूज़र ने अपना विश्लेषण इस बिन्दु पर केंद्रित किया कि पूंजीवादी व्यवस्था अपने स्थायित्व को कैसे बनाए रखती है। ग्राम्शी ने 'वर्चस्व' (Hegemony) की संकल्पना प्रस्तुत की जिसमें उसने बताया कि पूंजीवादी वर्ग अपना 'वर्चस्व' दो संस्थाओं-नागरिक समाज (Civil Society) तथा राज्य (State) के माध्यम से बनाए रखता है। नागरिक समाज के अंतर्गत वे सभी संस्थाएँ शामिल हैं जो समाज की विचारधारा निर्मित करती हैं, जैसे शिक्षा संस्थाएँ, धार्मिक संस्थाएँ तथा परिवार आदि। ये सभी संस्थाएँ व्यक्ति को वही मूल्य सिखाती हैं जो व्यवस्था के पक्ष में होते हैं, न कि विरोध में। इसका परिणाम ~~यह होता~~ है ~~कि सभी~~ व्यक्ति आदतन पूंजीवादी मानसिकता से सोचने लगते हैं जबकि उनके जीवन की स्थितियाँ इसके विपरीत होती हैं। जब नागरिक समाज की संस्थाएँ यह कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर पातीं तो राज्य अपनी दमनात्मक शक्ति का प्रयोग करता है और किसी भी विद्रोह अथवा क्रांति को बर्बरतापूर्वक कुचल देता है।

एरिक फ्रॉम, हर्बर्ट मारक्यूज़, हैबरमास तथा सार्त्र ने पूंजीवादी समाज के अंतर्गत मनुष्य की सृजनात्मकता और उस पर विद्यमान खतरों का विश्लेषण किया। एरिक फ्रॉम ने बताया कि पूंजीवादी प्रणाली से सम्बद्ध व्यक्ति सृजनात्मक कार्य नहीं कर पाते, इसलिए उनमें अलगाव और अकेलापन पैदा होता है। इससे मुक्ति का उपाय यही है कि व्यक्ति अपने उत्पादक कार्यों से भिन्न कुछ ऐसे कार्य करे जिसमें उसकी रचनात्मकता और सहज भावनाएँ व्यक्त होती हों।

मार्क्यूज़ ने समकालीन पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न किये गये 'उपभोक्तावाद' (Consumerism) का विस्तृत विवेचन किया है। अपनी पुस्तक 'एकआयामी मनुष्य' (One Dimensional Man) में उसने कहा कि वर्तमान श्रमिकों का संकट न तो कम वेतन है और न

Copyright – Drishti The Vision Foundation

ही काम की अमानवीय दशाएँ। कल्याणकारी लोकतंत्र और श्रमिक आंदोलनों के कारण मजदूरों की आय तथा कार्य-स्थितियाँ प्रायः बेहतर हुई हैं। इन बेहतर स्थितियों की उपयोगिता यह होनी चाहिये थी कि कामगार अपनी रचनात्मक स्वतंत्रता का प्रयोग करते किंतु उत्तर-औद्योगिक पूंजीवाद ने इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रयोग करते हुए व्यक्ति की उपभोग करने की इच्छाओं को असीमित रूप से बढ़ा दिया है। इच्छाओं का यह विस्फोट इतना तीव्र और भयानक है कि व्यक्ति अपनी परिभाषा अपने उपभोग-स्तर से ही करने लगा है। वह निरंतर नई-नई भौतिक इच्छाओं का दास बनता है और यह प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं होती। विडम्बना तो यह है कि न केवल वह अपनी रचनात्मक स्वतंत्रता खो चुका है बल्कि उसे यह समझ भी नहीं है कि उसकी रचनात्मकता खो गई है।

इस प्रकार, नवमार्क्सवादी विचारकों ने आज के मनुष्य और उसकी रचनात्मकता तथा अलगाव जैसे संकटों को समकालीन पूंजीवाद के परिदृश्य में विश्लेषित किया है। इस विश्लेषण की उपयोगिता यह है कि इसने अमेरिकी और यूरोपीय नागरिकों के सामने उत्पन्न हो रहे मनोवैज्ञानिक संकटों के समाधान का वैज्ञानिक नज़रिया प्रस्तुत किया है। इन विचारों की सीमा यह है कि ये एशियाई और अफ्रीकी देशों की मूल समस्याओं से नहीं जुड़ पाते क्योंकि इन देशों में गरीबी और शोषण इतना अधिक है कि मानव की रचनात्मक स्वतंत्रता का विचार अभी अर्थपूर्ण प्रतीत नहीं होता है।

साम्यवाद/मार्क्सवाद की सीमाएँ *(Limitations of Communism/Marxism)*

अलग-अलग विचारधाराओं के विद्वानों ने मार्क्सवाद की सीमाओं पर अपने तरीके से प्रकाश डाला है। कुछ सीमाएँ मार्क्सवाद के सैद्धांतिक पक्षों से जुड़ी हैं तो कुछ व्यावहारिक पक्षों से। कुछ प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) वर्तमान में राज्य की शक्तियाँ अत्यधिक बढ़ चुकी हैं, अतः क्रांति की संभावना अब प्रायः शून्य है।

(2) जहाँ-जहाँ क्रांति हुई, वहाँ भी साम्यवाद की अवस्था नहीं आ पाई। इसका अर्थ है कि साम्यवाद एक काल्पनिक धारणा है जिसके वास्तव में साकार होने की संभावना नहीं के बराबर है।

(3) मार्क्स ने अपने वर्ग सिद्धांत में मध्यवर्ग को महत्व नहीं दिया परन्तु अब यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इस वर्ग को शामिल किए बिना कोई भी सिद्धांत वर्तमान में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता।

(4) कॉर्पोरेट या निगमीकृत पूंजीवाद ने क्रांति की संभावनाएँ समाप्त कर दी हैं क्योंकि अब पूंजी शेयर के रूप में होती है और लाखों व्यक्ति एक ही कारखाने के मालिक हैं। यहाँ तक कि कई मजदूर भी कुछ शेयर खरीदकर मालिक हो जाते हैं। अतः क्रांति कौन और किसके विरुद्ध करेगा, यह स्पष्ट ही नहीं हो सकता।

(5) कल्याणकारी राज्य तथा लोकतंत्र के कारण क्रांति की आवश्यकता भी नहीं बची है क्योंकि राज्य ने विभिन्न कल्याण योजनाओं के माध्यम से वे अधिकांश लाभ वंचित वर्गों को दे दिए हैं जिनकी प्राप्ति के लिए क्रांति का सिद्धांत दिया गया था।

(6) मार्क्सवादी राज्यों से भी समाजवाद समाप्त होता जा रहा है, जैसे सोवियत संघ, हंगरी इत्यादि।

(7) जिन देशों में समाजवाद स्थापित हुआ, वहाँ भी समानता स्थापित नहीं हो पाई। वहाँ आर्थिक विषमता तो कम हुई किंतु राजनीतिक विषमता बढ़ गयी।

(8) मार्क्स के अनुसार क्रांति उन देशों में होनी थी जहाँ पूंजीवाद का चरम विकास हुआ हो, लेकिन क्रांति उन देशों में हुई जहाँ पूंजीवाद का विकास नहीं के बराबर था, जैसे रूस व चीन।

(9) साम्यवाद में राज्य का अस्तित्व नहीं होगा तो वैश्विक व्यवस्था किस प्रकार कार्य करेगी, यह मार्क्स ने स्पष्ट नहीं किया है।

(10) 1960 के बाद कई ऐसी नवीन समस्याएँ उठीं जिन्हें मार्क्सवादी नजरिये के अन्तर्गत सुलझाना आसान नहीं था। उदाहरण के लिए, लिंग-भेद, नस्ल-भेद और जाति-भेद का खण्डन मार्क्सवाद के भीतर पूर्णतः नहीं किया जा सकता है। इन आंदोलनों ने मार्क्सवाद के विचारधारात्मक दावे को कमजोर किया।

(11) खूनी संघर्ष चाहे जितना भी अनिवार्य प्रतीत हो किंतु नैतिक दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता।

(12) वर्तमान में प्रत्येक विचारधारा को एकांगी मानकर 'विचारधारा के अंत' का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से मार्क्सवाद भी अप्रासंगिक है। यह खण्डन मूलतः जीन फ्रॉंसिस ल्योतार, डेनियल बैल आदि ने किया है।

(13) धर्म में निहित शक्तियों को मार्क्स ने नगण्य मान लिया, इसलिए उसका सही मूल्यांकन नहीं कर पाया।

मार्क्सवाद की प्रासंगिकता

कुछ लोग दावा करते हैं कि मार्क्सवाद अब प्रासंगिक नहीं रहा क्योंकि सोवियत संघ का पतन हो चुका है, चीन जैसे देश मार्क्सवादी आवरण के बावजूद भीतर ही भीतर पूंजीवादी प्रणाली स्वीकार कर चुके हैं, पूर्वी यूरोप का समाजवाद नष्ट हो चुका है और शेष देशों में भी मार्क्सवाद की उपस्थिति नहीं के बराबर है। जहाँ-जहाँ समाजवाद विद्यमान है, वह भी उदार लोकतंत्र से इतना घुलमिल चुका है कि उसमें मार्क्सवादी तेवर कम, उदारवादी तेवर ज्यादा नज़र आते हैं। भारत जैसे देश इसी प्रवृत्ति के उदाहरण हैं जहाँ का संविधान 'समाजवाद' का दावा करता है किंतु जहाँ की अर्थव्यवस्था नव-उदारवाद के सिद्धांतों पर टिक चुकी है।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

पारम्परिक मार्क्सवाद की प्रासंगिकता अब कम है, यह स्वीकार करना ज़रूरी है। वर्ग संघर्ष और खूनी क्रांति जैसी अवधारणाएँ आज ज्यादा उपयोगी प्रतीत नहीं होतीं। वर्गों में ध्रुवीकरण वैसा नहीं हुआ जैसा मार्क्स ने सोचा था। उच्च वर्ग का आकार पहले से बढ़ा ही है और मध्य वर्ग तो सबसे बड़ा वर्ग बन गया है। निगमीकृत पूंजीवाद (Corporate Capitalism) ने मजदूर को पूंजी का अंशधारक बनाकर बुर्जुआ और सर्वहारा वर्ग के अन्तर ही समाप्त कर दिए हैं। मजदूरों का वेतन बढ़ा है, कार्य दशाएँ सुधरी हैं, सामाजिक सुरक्षा बढ़ी है और राजनीतिक हस्तक्षेप की उनकी क्षमता में खासा इजाफा हुआ है। लोक कल्याणकारी राज्य ने ट्रेड यूनियन आंदोलन के साथ मिलकर यह संभव कर दिया है कि बिना हिंसक क्रांति के समाजवाद के उद्देश्य पूरे हो जाएँ। इतना ही नहीं, यदि कोई वर्ग संघर्ष करना भी चाहे तो यह संभव नहीं रहा है क्योंकि चरम पूंजीवादी देशों में राज्य के पास ऐसे हथियार हैं कि वह किसी भी क्रांति को पूरी तरह कुचल सकता है।

किंतु, इसका यह अर्थ नहीं कि अब मार्क्सवाद प्रासंगिक नहीं रहा। वर्तमान समय में भी यह कई कारणों से खुद को प्रासंगिक बनाए हुए है। ऐसे प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं-

(1) यह नहीं भूलना चाहिए कि वर्तमान में भी कई देश साम्यवादी शासन प्रणाली के अनुसार राजव्यवस्था चला रहे हैं। चीन 1949 की क्रांति के समय से ही साम्यवादी रास्ते पर चल रहा है। क्यूबा ने 1959 की क्रांति के दो वर्ष बाद 1961 में खुद को साम्यवादी देश घोषित किया और वह आज तक स्वयं को साम्यवादी देश मानता है। लाओस 1975 से तथा वियतनाम 1976 से घोषित तौर पर साम्यवादी देश हैं। उत्तरी कोरिया भी काफी हद तक साम्यवादी सिद्धांतों को अपनी राजकीय नीतियों का हिस्सा मानता है। साइप्रस और नेपाल में पिछले कुछ वर्षों से मार्क्सवादी पार्टियों ने सरकार के गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा, कई देश ऐसे हैं जहाँ विभिन्न दलों के गठबंधन सरकार चला रहे हैं और उन गठबंधनों में मार्क्सवादी दल शामिल हैं। ऐसे देशों में बोलीविया, बेलारूस, ब्राज़ील, दक्षिणी अफ्रीका, यूक्रेन तथा श्रीलंका आदि शामिल हैं। लैटिन अमेरिकी देशों में तो मार्क्सवादी राजनीति की उपस्थिति काफी ठोस तरीके से देखी जाती है।

(2) आज के समय में मार्क्सवाद की प्रासंगिकता पूंजीवाद की नई विसंगतियों का पहचान करने में है। हर्बर्ट मारक्यूज़ ने अपनी पुस्तक 'एक आयामी मनुष्य' (One Dimensional Man) में पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न उपभोक्तावादी मानसिकता का इसी आधार पर खंडन किया। इसी प्रकार एरिक फ्रॉम ने बताया कि पूंजीवाद श्रमिकों को उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व से कैसे अलग कर देता है।

(3) वर्तमान मार्क्सवाद बताता है कि ऊपर से लोक-कल्याणकारी दिखने वाला राज्य अपनी भीतरी संरचना में किस प्रकार दमनकारी होता है। एंटोनियो ग्राम्शी और लुई आल्थूज़र ने अपने विश्लेषण में बताया है कि राज्य पहले वैचारिक साधनों से सभी व्यक्तियों की मानसिकता को नियंत्रित करता है और जब ऐसा नहीं हो पाता है, तब यह दमनकारी शक्ति का प्रयोग करता है।

(4) मार्क्सवाद किसी भी प्रकार के शोषण और दमन के विरुद्ध है। आज का मार्क्सवाद लगातार इस बात की पहचान करता है कि विश्व में किन-किन वर्गों के साथ शोषण और दमनकारी व्यवहार हो रहा है। उपनिवेशवाद, लिंग भेद, नस्लभेद और 'डिजिटल डिवाइड' जैसे सभी मुद्दों पर मार्क्सवाद ने वंचित समूहों का पक्ष लिया है।

(5) यह कहना भी संभव नहीं है कि वर्ग संघर्ष और क्रांति की धारणाएँ पूरी तरह अप्रासंगिक हो गई हैं। आज भी कई देशों में आर्थिक समता के लिए सशस्त्र विद्रोह मार्क्सवादी प्रेरणा से हो रहे हैं। भारत के कई राज्यों में पनपता हुआ 'नक्सलवाद' और नेपाल का 'माओवाद' इस बात के प्रमाण हैं कि समानता की स्थापना के लिए आज भी मार्क्सवादी संघर्ष की विधि प्रचलित है।

(6) मार्क्सवाद समकालीन विश्व के समक्ष उभरते हुए संकटों का भी गहरा विश्लेषण कर रहा है। उसने बताया है कि नाभिकीय और जैविक हथियारों का संकट केवल पूंजीवाद की अधिक लाभ कमाने की प्रेरणा के परिणाम हैं क्योंकि पूंजीवाद में हथियारों को एक उद्योग माना जाता है, न कि समस्या। इसी प्रकार, पर्यावरण संकट का संबंध किस प्रकार पूंजीवाद की अति-उपभोगवादी प्रवृत्ति से है, और अल्प-विकसित देशों को इसकी कीमत न चुकानी पड़े- ये पक्ष भी मार्क्सवादी चिन्ता में शामिल हैं।

वस्तुत: कोई भी विचारधारा कुछ मूल्यों पर टिकी होती है और कुछ नियमों या सिद्धांतों को प्रस्तावित करती है। समय और स्थितियाँ बदलने से कई बार वे नियम या सिद्धांत खंडित हो जाते हैं जो उस विचारधारा ने प्रस्तावित किए थे। ऐसी स्थिति में भी वे मूल्य अप्रासंगिक नहीं हो जाते जिनके लिए नियमों या सिद्धांत का निर्माण किया गया था। आज के समय में वर्ग संघर्ष और क्रांति के विचार चाहे ज्यादा प्रासंगिक न रहे हों पर मूल्यों के स्तर पर मार्क्सवाद तब तक प्रासंगिक रहेगा जब तक दुनिया में किसी भी प्रकार का शोषण और दमन होता रहेगा।

Copyright – Drishti The Vision Foundation

भारत में नक्सलवाद और माओवाद *(Naxalism and Maoism in India)*

वर्तमान भारत में नक्सलवाद और माओवाद एक बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान है। इस विचारधारा का मूल संबंध मार्क्स के वर्ग संघर्ष तथा हिंसक क्रांति के सिद्धांतों से है। आंतरिक सुरक्षा की दृष्टि से इन समस्याओं का समाधान करना भारतीय राज्य के लिए अब आवश्यक होता जा रहा है। नीचे संक्षेप में इन विचारधाराओं का परिचय दिया जा रहा है।

नक्सलवाद *(Naxalism)*

स्वतंत्र भारत के राजनीतिक इतिहास में नक्सलवादी विचारधारा और आन्दोलन का विशेष महत्त्व है। 'नक्सलवाद' शब्द 'नक्सलबाड़ी' नामक गाँव के नाम से विकसित हुआ है जो पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में स्थित है। 1967 ई. की एक घटना से नक्सलवाद का औपचारिक आरंभ माना जाता है, हालाँकि इसका इतिहास 1946 से 1951 तक चले तेलंगाना आंदोलन से गहरे तौर पर जुड़ा है जहाँ स्वतंत्र भारत में पहली बार हिंसक क्रान्ति (Violent Revolution) की विचारधारा के साथ कुछ आदिवासी किसानों (Tribal peasants) द्वारा भूमिपतियों (Landlords) से अपने द्वारा जोती जाने वाली ज़मीन के अधिकार हासिल करने की कोशिश की गयी थी।

1964 में जब 'संयुक्त कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया' (यूनाइटेड सी.पी.आई.) से अलग होकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM) ने राज्य का पूर्ण विरोध करने के स्थान पर चुनाव प्रणाली में भाग लेने का फैसला किया तो चारू मजूमदार, कानू सान्याल आदि क्रांतिकारियों ने इसे 'अवसरवाद' (Opportunism) कहकर खारिज कर दिया। 1967 के चुनावों में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM) की जीत हुई। तभी, 1967 में नक्सलबाड़ी नामक गाँव में एक किसान की ज़मीन के मुद्दे को लेकर ज़मींदार और किसान नेताओं में झड़प हुई, जिसमें एक पुलिस इंस्पेक्टर की मृत्यु हो गयी। इस घटना ने 'संथाल जनजाति' के बहुत सारे भूमिहीन कृषकों को प्रेरित किया कि वे अपने भूमि अधिकारों के लिये सीधे-सीधे हिंसक संघर्ष (Violent struggle) में शामिल हों। यहीं से नक्सल आन्दोलन की शुरुआत हुई और लगभग 72 दिनों तक यह आन्दोलन चलता रहा। उस समय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM) के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा (United Front) की सरकार ने पश्चिम बंगाल में शासन करना आरंभ कर दिया था और उसी ने इस आन्दोलन को कुचला। इस आन्दोलन को कुचलने के लिए केन्द्र सरकार का भी पश्चिम बंगाल सरकार पर अत्यधिक दबाव था।

चारू मजूमदार तथा कानू सान्याल जैसे क्रांतिकारियों ने 1969 में अपने नये दल, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) (CPI-ML) का गठन किया। तब से आज तक नक्सलवादी आन्दोलन का मूल संबंध इसी दल से जोड़कर देखा जाता है। इसके अलावा, कुछ और दल जो नक्सल आन्दोलन से जुड़े हैं, उनमें माओवादी कम्युनिस्ट संटर (MCC-Maoist Communist Centre) तथा पीपल्स वार ग्रुप (PWG- Peoples War Group) प्रमुख हैं। इस आन्दोलन की शुरुआत पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों से हुई थी, किंतु वर्तमान में यह दस राज्यों के लगभग 180 जिलों तक फैल चुका है। छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, झारखण्ड तथा पश्चिम बंगाल इससे काफी ज्यादा प्रभावित हैं जबकि महाराष्ट्र, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा कर्नाटक पर इसका थोड़ा बहुत असर है। पिछले कुछ वर्षों में छत्तीसगढ़ के दन्तेवाड़ा तथा नारायणपुर क्षेत्रों में नक्सलवादियों द्वारा केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (CRPF-Central Reserve Police Force) के बहुत से कर्मचारियों की हत्या तथा 2013 में बस्तर इलाके में बहुत से राजनेताओं की हत्या ने सिद्ध कर दिया है कि नक्सलवादी आन्दोलन को हल्के में लेना आन्तरिक सुरक्षा (Internal Security) की दृष्टि से एक बड़ी भूल होगी।

नक्सलवादी विचारधारा मूलत: माओ त्से तुंग के विचारों से प्रभावित है। 1949 में 'माओ' ने चीन में जिस तरह हिंसक क्रांति (Voilent Revolution) की थी, वैसी ही क्रान्ति करने का सपना नक्सलवादियों का था। ये राज्य (State) को उच्च वर्ग (Haves or Upper Class) के हाथों की कठपुतली मानते थे और इनका दावा था कि भूमिपतियों (Landlords) और सामंतों (Feudal lords) की आर्थिक ताकत के सहारे से बनी सरकार से यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि वह भूमिहीन किसानों को उनके भूमि संबंधी अधिकार दिलायेगी। इसलिये चारू मजूमदार तथा उनके सहयोगियों ने गरीब किसानों और आदिवासियों को प्रेरित किया कि यदि वे शोषण (Exploitation) और दमन (Suppression) से मुक्ति चाहते हैं तो राज्य (State) तथा शोषक वर्ग के खिलाफ हिंसक संघर्ष (Violent Struggle) का रास्ता चुनें।

माओवाद *(Maoism)*

भारत के संदर्भ में नक्सलवाद और माओवाद में कोई विशेष अन्तर नहीं है। नक्सलवाद के प्रवर्तक चारू मजूमदार खुद माओवादी विचारधारा से प्रभावित थे और वे माओ की नीतियों को ही लागू करना चाह रहे थे। यह अन्तर ज़रूर है कि चीनी क्रान्ति सफल होने के बाद माओवाद चीन की राजकीय विचारधारा (State Ideology) बन गया और कई नए प्रश्नों व चुनौतियों का उत्तर देने के लिए माओवादी विचारधारा का कलेवर व्यापक होता गया। चारू मजूमदार तथा उनके सहयोगियों का ज्यादा ध्यान इसी बात पर रहा कि राज्य के विरुद्ध हिंसक क्रांति को सफल कैसे बनाया जाये? इसलिये, कहा जा सकता है कि नक्सलवादी विचारधारा में उतनी व्यापकता नहीं आ सकी जितनी कि माओवाद में है।

Copyright – Drishti The Vision Foundation